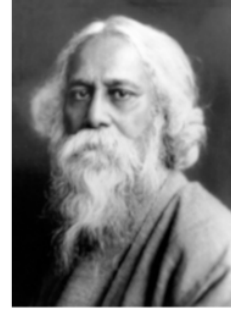


# आँख की किरकिरी दूसरा भाग



रविंद्रनाथ टैगोर

हिन्दी  
ADDA

आँख की किरकिरी

दूसरा भाग

13. विनोदिनी जब बिलकुल ही पकड़ में न आई, तो आशा को एक तरकीब सूझी। बोली, 'भई आँख की किरकिरी, तुम मेरे पति के सामने क्यों नहीं आती, भागती क्यों फिरती हो?'

विनोदिनी ने बड़े संक्षेप में लेकिन तेज स्वर में कहा - 'छि:!'।

आशा बोली - 'क्यों? माँ से मुझे पता चला है, तुम हम लोगों की गैर नहीं हो।'

गंभीर हो कर विनोदिनी ने कहा - 'संसार में अपना-पराया कोई नहीं होता। जो अपना मानता है, वही अपना है और जो पराया समझता है, वह अपना होते हुए भी पराया है।'

आशा ने देखा, यह बात लाजवाब है। वास्तव में उसके पति विनोदिनी के साथ ज्यादाती करते हैं, सचमुच उसे गैर समझते हैं और नाहक ही उससे खीझा करते हैं।

उस दिन साँझ को आशा ने बड़े नाजो-अंदाज से पति के सामने छोड़ा- 'तुम्हें मेरी आँख की किरकिरी से परिचय करना पड़ेगा।'

महेंद्र हँस कर बोला, 'तुम्हारे साहस की बलिहारी!'

आशा ने पूछा - 'क्यों, इसमें डर किस बात का?'

महेंद्र - 'अपनी सखी की जिस गजब की खूबसूरती का जिक्र किया करती हो वह तो खतरे से खाली नहीं।'

आशा ने कहा - 'खैर, वह मैं देख लूँगी। तुम उससे बोलोगे या नहीं, इतना बता दो।'

विनोदिनी को देखने का कौतूहल महेंद्र को भी था। फिर भी यह आग्रह उसे ठीक नहीं लग रहा था।

हृदय के नाते के बारे में महेंद्र के उचित-अनुचित का आदर्श औरों की अपेक्षा कुछ कड़ा था। इसके पहले वह विवाह की बात नहीं सुनना चाहता था, इसलिए कि कहीं माँ के अधिकार पर आँच न आए। और अब आशा के संबंध की रक्षा वह इस तरह से करना चाहता कि किसी पराई औरत के लिए मन में जरा-सा कौतूहल न पैदा हो। प्यार के मामले में वह बड़ा वैसा-सा है, लेकिन पक्का- इस बात का उसे मन-ही-मन नाज भी था। यहाँ तक कि वह चूँकि बिहारी को अपना दोस्त कहता, इसलिए दूसरे किसी को भी वह मित्र नहीं मानना चाहता। कोई उसकी ओर खिंच कर आता भी तो

वह जबर्दस्ती उसकी ओर से लापरवाही दिखाता और बिहारी के सामने उस बेचारे का मजाक उड़ाते हुए अपनी उदासी जाहिर करता। बिहारी कहीं एतराज करता तो महेंद्र कहता, 'यह तुमसे हो सकता है। कहीं भी जाते हो, तुम्हें मित्रों की कमी नहीं रहती, मगर मैं हर किसी को मित्र नहीं मान सकता।'

ऐसे महेंद्र का मन जब इधर एक अपरिचिता की ओर कौतूहल और व्यग्रता से बरबस खिंच जाया करता, तो अपने आदर्श के आगे वह नीचा हो जाता। सो वह विनोदिनी को घर से हटाने के लिए अपनी माँ को तंग करने लगा।

महेंद्र ने कहा - 'रहने भी दो चुन्नी, तुम्हारी किरकिरी से गप-शप की फुर्सत कहाँ है अपने पास? पढ़ने के वक्त किताबों से नाता और फुर्सत की घड़ियों के लिए तुम हो-इस बीच... !'

दोनों के बीच में विनोदिनी के लिए सुई की नोक-भर भी जगह छोड़ने को महेंद्र तैयार नहीं था, यह बात उसके गर्व का विषय बन बैठी। उसका वह गर्व आशा से सहा नहीं जाता, पर आज उसने हार कबूल कर ली। कहा - 'खैर, मेरी ही खातिर तुम मेरी किरकिरी से बोलो!'

आशा के आगे अपने प्रेम की दृढ़ता और श्रेष्ठता प्रमाणित करके अंत में बड़ी कृपा करके वह विनोदिनी से बात करने को राजी हुआ।

दूसरे दिन सुबह आशा गई और सोई हुई विनोदिनी से लिपट गई। विनोदिनी बोली - 'यह कैसा गजब! चकोरी आज चाँद छोड़ कर मेघ के दरबार में?'

आशा ने कहा - 'तुम लोगों की यह कविता मेरी समझ में नहीं आती, फिर गोबर में नाहक घी क्या डालना! जो इन बातों का जवाब दे सकता है, चल कर एक बार उसे सुनाओ!'

विनोदिनी ने पूछा - 'आखिर वह रसिक है कौन?'

आशा ने कहा - 'तुम्हारे देवर- मेरे पति। मजाक नहीं, तुमसे बातें करने के लिए वह मुझे परेशान कर रहे हैं।'

विनोदिनी अपने मन में बोली - 'बीवी के हुकम से मेरी बुलाहट हुई है और मैं सिर पर पाँव रख कर भागी जाऊँगी- ऐसी समझा है मुझे!'

विनोदिनी किसी भी तरह तैयार न हुई। आशा पति के सामने बड़ी लज्जित हुई।

मन-ही-मन महेंद्र इस पर बड़ा नाराज हुआ, 'मेरे सामने आने में एतराज! मुझे दूसरे मामूली लोगों-सा समझती है? और कोई होता तो जाने कब, कितने बहानों से विनोदिनी से मिलता, बोलता-चालता। लेकिन महेंद्र ने इसकी कभी कोशिश तक न की, इसी से विनोदिनी को क्या मेरा परिचय नहीं मिला? वह एक बार भली तरह जान लेती तो समझ जाती कि मुझमें और दूसरे किसी पुरुष में क्या फर्क है।'

दो दिन पहले विनोदिनी भी कुढ़न से बोली थी, 'इतने दिनों से इस घर में हूँ और महेंद्र एक बार मुझे देखने की कोशिश भी नहीं करता! बुआ के कमरे में होती हूँ तब भी वह किसी बहाने अपनी माँ के पास नहीं आता। ऐसी लापरवाही किस बात की। मैं कोई जड़ पदार्थ हूँ! मैं आदमी नहीं... स्त्री नहीं! कहीं वह मुझे जान पाता तो पता चलता कि उसकी प्यारी चुन्नी और मुझमें क्या फर्क है!'

आशा ने तरकीब सुझाई- 'तुम कॉलेज गए हो, यह कह कर मैं उसे अपने कमरे में ले आऊँगी कि अचानक बाहर से तुम आ जाना! बस, कोई बस न चलेगा।'

महेंद्र ने पूछा - 'आखिर किस गुनाह के लिए उसे इतनी बड़ी सजा?'

आशा बोली - 'मुझे गुस्सा आ गया है- तुमसे मुलाकात करने में भी आपत्ति! उसकी अकड़ तोड़ कर ही रहूँगी।'

महेंद्र बोला - 'तुम्हारी प्यारी सखी को देखे बिना मैं मरा नहीं जा रहा हूँ। मैं यों चोरों की तरह मिलना नहीं चाहता।'

आशा ने महेंद्र का हाथ पकड़ कर विनती की- 'मेरे सिर की कसम तुम्हें, एक बार, बस एक बार तो तुम्हें यह करना ही पड़ेगा। जैसे भी हो, उसकी हेकड़ी तो भुलानी ही पड़ेगी। फिर तुम्हारा जैसा जी चाहे करना।'

महेंद्र चुप रहा। आशा बोली - 'मेरी आरजू है, मान जाओ!'

महेंद्र को भी ललक हो रही थी। इसीलिए बेहद उदासी दिखा कर वह सहमत हुआ।

शरत की धुली दोपहरी। महेंद्र के कमरे में विनोदिनी आशा को कार्पेट के जूते बनाना बता रही थी। आशा अनमनी-सी बार-बार बाहर ताक-ताक कर गिनती में भूल करके अपना बेहद सीधापन दिखा रही थी।

आखिर तंग आ कर विनोदिनी ने उसके हाथ का कार्पेट झपट कर गिरा दिया और कहा - 'यह तुम्हारे बस का नहीं, मैं चलती हूँ, काम पड़ा है।'

आशा ने कहा - 'बस, जरा देर और देखो, अब भूल नहीं होगी।'

आशा सीने से लग गई।

इतने में दबे पाँव महेंद्र आया और दरवाजे के पास विनोदिनी के पीछे खड़ा हो गया। आशा सिलाई पर आँखें गाड़े हुए ही धीरे-धीरे हँसने लगी।

विनोदिनी ने पूछा - 'एकाएक हँसी किस बात पर आ गई?'

आशा से और न रहा गया। वह खिलखिला पड़ी और विनोदिनी के बदन पर कार्पेट फेंक कर बोली, 'तुमने ठीक ही कहा, यह मेरे बस का नहीं।' और विनोदिनी से लिपट कर और जोर से हँसने लगी।

विनोदिनी पहले ही ताड़ गई थी। आशा की चंचलता और हाव-भाव से उससे छिपा कुछ न था। वह यह भी खूब जान गई थी कि महेंद्र कब चुपचाप उसके पीछे आ कर खड़ा हो गया। निरी नादान बन कर उसने अपने को आशा के आसान जाल में फँसने दिया।

अंदर आते हुए महेंद्र ने कहा - 'मैं बदनसीब ही इस हँसी से क्यों वंचित हूँ।'

चौंक कर विनोदिनी ने माथे पर कपड़े का पल्ला डाला और उठने लगी। आशा ने उसका हाथ धर दबाया।

महेंद्र ने कहा - 'या तो आप बैठिए, मैं चला जाता हूँ, या फिर आप भी बैठिए, मैं भी बैठता हूँ।'

जैसा कि आम तौर से औरतें करती हैं, छीना-झपटी, शोर-गुल करके विनोदिनी ने शर्म की धूम नहीं मचाई। उसने सहज ही सुर में कहा - 'आपके ही अनुरोध से बैठती हूँ, लेकिन मन-ही-मन अभिशाप न दीजिएगा।'

महेंद्र ने कहा - 'अभिशाप दूँगा। दूँगा कि आप में देर तक चलने की शक्ति न रह जाए।'

विनोदिनी ने कहा - 'इस अभिशाप से मैं नहीं डरती। क्योंकि आपका देर तक ज्यादा देर का नहीं होगा, शायद अब खत्म भी हो चला।'

और उसने फिर उठ कर खड़ा होना चाहा। आशा ने उसका हाथ थाम लिया। कहा - 'सिर की सौगंध तुम्हें, और कुछ देर बैठो!'

14.आशा ने पूछा, 'अब सच-सच बताना, मेरी आँख की किरकिरी कैसी लगी तुम्हें?'

महेंद्र ने कहा - 'बुरी नहीं।'

आशा बहुत ही क्षुब्ध हो कर बोली, 'तुम्हें तो कोई अच्छी ही नहीं लगती।'

महेंद्र - 'सिर्फ एक को छोड़ कर।'

आशा ने कहा - 'अच्छा, परिचय जरा जमने दो, फिर देखती हूँ, अच्छी लगती है या नहीं।'

महेंद्र बोला - 'जमने दो? यानी ऐसा लगातार चला करेगा रवैया?'

आशा ने कहा - 'भलमनसाहत के नाते भी तो लोगों से बोलना-चालना पड़ता है। एक दिन की भेंट के बाद ही अगर मिलना-जुलना बंद कर दो, तो क्या सोचेगी बेचारी? तुम्हारा हाल ही अजीब है। और कोई होता तो ऐसी स्त्री से दौड़ कर मिला करता और तुम हो कि आफत आ पड़ी मानो!'

औरों से अपने इस फर्क की बात सुन कर महेंद्र खुश हुआ। बोला - 'अच्छा यही सही। मगर ऐसी जल्दबाजी क्या? मैं कहीं भागा तो नहीं जा रहा हूँ, न तुम्हारी सखी को भागने की जल्दी है- लिहाजा, बीच-बीच में भेंट हुआ ही करेगी और भेंट होने पर भलमनसाहत रखे, इतनी अक्ल तुम्हारे पति का है।'

महेंद्र ने सोचा था, अब से विनोदिनी किसी-न-किसी बहाने जरूर आ जाया करेगी। लेकिन गलत समझा था। वह पास ही नहीं फटकती कभी, अचानक जाते-आते भी कहीं नहीं मिलती।

अपनी स्त्री से वह इसका जिक्र भी न करता कि कहीं मेरा आग्रह न झलक पड़े। बीच-बीच में विनोदिनी से मिलने की स्वाभाविक और मामूली-सी इच्छा को छिपाए और दबाए रखने की कोशिश में उसकी अकुलाहट बढ़ने लगी। फिर विनोदिनी की उदासीनता उसे और उत्तेजित करने लगी।

विनोदिनी से भेंट होने के दूसरे दिन प्रसंगवश यों ही मजाक में महेंद्र ने आशा से पूछा - 'तुम्हारा यह अयोग्य पति तुम्हारी आँख की किरकिरी को कैसा लगा?'

महेंद्र को इसकी जबरदस्त आशा थी कि पूछने से पहले ही आशा से उसे इसका बड़ा ही अच्छा ब्यौरा मिलेगा। लेकिन सब्र करने का जब कोई नतीजा न निकला, तो ढंग से यह पूछ बैठा।

आशा मुश्किल में पड़ी। विनोदिनी ने कुछ भी नहीं कहा। इससे आशा अपनी सखी से नाराज हुई थी। बोली - 'ठहरो भी, दो-चार दिन मिल-जुल कर तो कहेगी। कल भेंट भी कितनी देर को हुई और बातें भी कितनी हो सकीं।'

महेंद्र इससे भी कुछ निराश हुआ और विनोदिनी के बारे में लापरवाही दिखाना उसके लिए और भी कठिन हो गया।

इसी बीच बिहारी आ पहुँचा। पूछा - 'क्यों भैया, आज किस बात पर विवाद छिड़ा हुआ है?'

महेंद्र ने कहा - 'देखो न, तुम्हारी भाभी ने कुमुदिनी या प्रमोदिनी जाने किससे तो जाने क्या नाता जोड़ा है लेकिन मुझे भी अगर उससे वैसा ही कुछ जोड़ना पड़े तो जीना मुश्किल जानो!'

आशा के घूँघट के अंदर घोर कलह घिर आया। बिहारी जरा देर चुपचाप महेंद्र की ओर ताकता रहा और हँसता रहा। बोला - 'भाभी, बात तो यह अच्छी नहीं। यह सब भुलाने की बातें हैं। तुम्हारी आँख की किरकिरी को मैंने देखा है, और भी अगर बार-बार देख पाऊँ, तो उसे दुर्घटना न समझूँगा, यह मैं कसम खा कर कह सकता हूँ। लेकिन इतने पर भी महेंद्र जब कबूल नहीं करना चाहते तो दाल में कुछ काला है।'

महेंद्र और बिहारी में बहुत भेद है, आशा को इसका एक और सबूत मिला।

अचानक महेंद्र को फोटोग्राफी का शौक हो आया। पहले भी एक बार उसने सीखना शुरू करके छोड़ दिया था। उसने फिर से कैमरे की मरम्मत की, और तस्वीरें लेना शुरू कर दिया। घर के नौकर-चाकरों तक के फोटो लेने लगा।

आशा जिद पकड़ बैठी- 'मेरी सखी की तस्वीर लेनी पड़ेगी।'

बहुत मुख्तसर में महेंद्र ने जवाब दिया- 'अच्छा!'

और उससे भी मुख्तसर में उसकी आँख की किरकिरी ने कहा - 'नहीं।' आशा को इसके लिए फिर एक तरकीब खोजनी पड़ी।

तरकीब यह थी कि आशा किसी तरह उसे अपने कमरे में बुलाएगी और सोते समय ही उसकी तस्वीर को ले कर महेंद्र एक खासा सबक देगा।

मजे की बात यह कि विनोदिनी दिन में कभी सोती नहीं। लेकिन उस दिन आशा के कमरे में उसे झपकी आ गई। बदन पर लाल ऊनी चादर डाले, खुली खिड़की की तरफ मुँह किए, हथेली पर सिर रखे वह ऐसी सुंदर अदा से सोई थी कि महेंद्र ने कहा - 'लगतता है, फोटो खिंचाने के लिए तैयार हुई है।'

दबे पाँव महेंद्र कैमरा ले कर आया। किस तरह से तस्वीर अच्छी आएगी, यह तय करने के लिए विनोदिनी को बड़ी देर तक बहुत अच्छी तरह देख लेना पड़ा। यहाँ तक कि कला की खातिर छिप कर सिरहाने के पास उसके बिखरे बालों को जरा-सा हटा देना पड़ा। नहीं जँचा तो उसे फिर से सुधार लेना पड़ा। कानों कान उसने आशा से कहा - 'पाँव के पास से चादर को जरा बाईं तरफ खिसका दो!'

भोली आशा ने उसके कानों में कहा - 'मुझसे ठीक न बनेगा, कहीं नींद न टूट जाए। तुम्हीं खिसका दो।'

महेंद्र ने चादर खिसका दी।

और तब उसने तस्वीर खींचने के लिए कैमरे में प्लेट डाली। डालना था कि खटका हुआ और विनोदिनी हिल उठी, लंबा निःश्वास छोड़ घबरा कर उठ बैठी। आशा जोर से हँस पड़ी। विनोदिनी बेहद नाराज हुई। अपनी जलती हुई आँखों से महेंद्र पर चिनगारियाँ बरसाती हुई बोली - 'बहुत बुरी बात है।'

महेंद्र ने कहा - 'बेशक बुरी बात है। लेकिन चोरी भी की और चोरी का माल हाथ न लगा, इससे तो मेरे दोनों काल गए। इस बुराई को ही लेने दीजिए, उसके बाद मुझे सजा दीजिएगा।'

आशा भी बहुत आरजू-मिन्नत करने लगी। तस्वीर ली गई। लेकिन पहली तस्वीर खराब हो गई। लिहाज़ा दूसरे दिन दूसरी तस्वीर लिए बिना फोटोग्राफर न माना। उसके बाद मित्रता के चिद्-स्वरूप दोनों सखियों की एक साथ एक तस्वीर लेने की बात आई। विनोदिनी 'ना' न कह सकी। बोली - 'यही लेकिन आखिरी है।'



यह सुन कर महेंद्र ने उस तस्वीर को बर्बाद कर दिया। इस तरह तस्वीर लेते-लेते परिचय काफी आगे बढ़ गया।

15. बाहर से हिला-डुला दो तो दबी राख में आग फिर से लहक उठती है। आशा और महेंद्र की मुहब्बत का उछाह मंद पड़ता जा रहा था, वह तीसरी तरफ की ठोकर से फिर जाग पड़ा।

आशा में हँसी-दिल्लगी की ताकत न थी, पर आशा उससे थकती न थी, लिहाज़ा विनोदिनी की आड़ में आशा को बहुत बड़ा आश्रय मिल गया। महेंद्र को हमेशा आनंद की उमंग में रखने के लिए उसे लोह के चने नहीं चबाने पड़ते थे।

विवाह होने के बाद कुछ ही दिनों में आशा और महेंद्र एक-दूसरे के लिए अपने को उजाड़ने पर आमादा थे - प्रेम का संगीत शुरू ही पंचम के निषाद से हुआ था, सूद के बजाय पूँजी ही भुना खाने पर तुले थे।

अब उसकी अपनी कोशिश न रह गई। महेंद्र और विनोदिनी जब हँसी-मज़ाक करते होते, वह बस जी खोल कर हँसने में साथ देती। पत्ते खेलने में महेंद्र आशा को बेतरह चकमा देता, तो आशा विनोदिनी से फैसले के लिए गिड़गिड़ाती हुई शिकायत करती। महेंद्र कोई मज़ाक कर बैठता या गैरवाजिब कुछ कहता तो आशा को यह उम्मीद होती कि उसकी तरफ से विनोदिनी उपयुक्त जवाब दे देगी। इस प्रकार इन तीनों की मंडली जम गई।

मगर इससे विनोदिनी के काम-धंधों में किसी तरह की ढिलाई न आ पाई। रसोई, गृहस्थी के दूसरे काम-काज, राजलक्ष्मी की सेवा-जतन- सारा कुछ खत्म करके ही वह इस आनंद में शामिल होती। महेंद्र आजिजी से कहता - 'नौकर-महरी को काम नहीं करने देती हो, चौपट करोगी उन्हें तुम।'

विनोदिनी कहती- 'काम न करके खुद चौपट होने से यह बेहतर है। तुम अपने कॉलेज जाओ!'

महेंद्र - 'ऐसी बदली के दिन?'

विनोदिनी - 'न यह नहीं होने का... गाड़ी तैयार है, जाना पड़ेगा।'

महेंद्र - 'मैंने तो गाड़ी को मना कर दिया था।'

विनोदिनी ने कहा 'मैंने कह रखा था।' कह कर महेंद्र की पोशाक ला कर हाज़िर कर दी।

महेंद्र - 'तुम्हें राजपूत के घर पैदा होना चाहिए था, लड़ाई के समय अपने आत्मीय को कवच पहनाती।'

मौज-मजे के लिए कॉलेज न जाना, पढ़ाई में ढिलाई करना विनोदिनी कतई न सह पाती थी। उसके कठोर शासन से दिन 'दोपहर को विनोद एकबारगी उठ गया और साँझ का अवकाश महेंद्र के लिए बड़ा ही रमणीक और मोहक हो उठा। उसका दिन मानो अवसान के इंतज़ार में रहता।

पहले बीच-बीच में रसोई समय पर न बनती और महेंद्र को कॉलेज न जाने का बहाना मिल जाता। अब विनोदिनी सारा इंतज़ाम खुद करके समय पर रसोई बनाती। खाना खत्म होता कि महेंद्र को खबर कर दी जाती- 'गाड़ी तैयार खड़ी है।' पहले कपड़ों का इस तरतीब से रहना तो दूर रहा। यही पता न होता था कि वे धोबी के यहाँ हैं कि अलमारी की ही किसी गुफा में पड़े हैं।

शुरू-शुरू में विनोदिनी इन बेतरतीबियों के लिए महेंद्र के सामने आशा को मीठा उलाहना दिया करती थी- महेंद्र भी उस बेचारी की ला-इलाज योग्यता पर स्नेह से हँस दिया करता। अंत में सखी के नेह से उसने आशा की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। घर की शकल बदल गई।

अचकन का बटन नदारद है, आशा झट-पट कोई तरकीब नहीं निकाल पाती कि विनोदिनी आ कर अचकन उसके हाथ से झपट लेती और बात-की-बात में सी देती। एक दिन महेंद्र की परसी हुई थाली बिल्ली ने जूठी कर दी। आशा परेशान। देखते-ही-देखते विनोदिनी ने रसोई से जाने क्या-क्या ला कर काम चला दिया। आशा दंग रह गई।

अपने खाने-पहनने, काम और आराम में, हर बात में तरह-तरह से महेंद्र को विनोदिनी के सेवा-स्पर्श का अनुभव होने लगा। विनोदिनी के बनाए रेशमी जूते उसके पाँवों में पड़े, विनोदिनी का बुना रेशमी गुलबंद गले में एक पति के पास जाती - उसमें कुछ तो होता आशा का अपना और कुछ किसी और का - अपनी वेश-भूषा के रूप और आनंद में वह अपनी सखी से मानो गंगा-यमुना-सी मिल गई है।

बिहारी की अब वह कद्र न रही थी- उसकी बुलाहट नहीं होती। उसने महेंद्र को लिख भेजा - 'कल इतवार है, दोपहर को आ कर मैं माँ के हाथ का बना भोजन खाऊँगा।' महेंद्र ने देखा, यह तो इतवार ही गोबर हो जाएगा। उसने जल्दी से लिख भेजा, 'इतवार को कुछ जरूरी काम से मुझे बाहर जाना पड़ेगा।'

फिर भी भोजन कर चुकने के बाद बिहारी खोज-खबर के लिए महेंद्र के यहाँ आया। नौकर से पता चला, महेंद्र कहीं बाहर नहीं गया है। 'महेंद्र भैया' कह कर उसने सीढ़ी से आवाज दी और कमरे में दाखिल हुआ। महेंद्र बड़ा अप्रतिभ हो गया। 'सिर में बे-हिसाब दर्द है'-कह कर उसने तकिए का सहारा लिया। यह सुन कर और महेंद्र के चेहरे का हाव-भाव देख कर आशा तो अचकचा गई। उसने विनोदिनी की तरफ इस आशय से ताका कि क्या करना चाहिए। विनोदिनी खूब समझ रही थी- मामला संगीन नहीं है, फिर भी घबरा कर बोली, 'बड़ी देर से बैठे हो, थोड़ी देर लेट जाओ! मैं यूडीकोलोन ले आती हूँ।'

महेंद्र बोला - 'रहने दो, उसकी जरूरत नहीं।'

विनोदिनी ने उस पर ध्यान न दिया। वह जल्दी से बर्फ-मिले पानी में यूडीकोलोन डाल कर ले आई। आशा को गीला रुमाल देती हुई बोली - 'उनके सिर पर बाँध दो!'

महेंद्र बार-बार कहने लगा - 'अरे छोड़ो-छोड़ो!' बिहारी हँसी रोक कर चुपचाप यह नाटक देखता रहा। मन में गर्व करते हुए महेंद्र ने कहा - 'कमबख्त बिहारी देखे कि मेरी कितनी इज्जत होती है!'

बिहारी खड़ा था। लाज से काँपते हाथों से आशा ठीक से पट्टी न बाँध पाई, लुढ़क कर यूडीकोलोन की एक बूँद महेंद्र की आँख से गिर गई। विनोदिनी ने आशा से रुमाल ले कर अपने कुशल हाथों से ठीक से बाँध दिया। सफेद कपड़े के दूसरे टुकड़े को यूडीकोलोन में भिगो कर धीमे-धीमे पट्टी पर निचोड़ने लगी। आशा घूँघट काढ़े पंखा झलती रही।

स्निग्ध स्वर में विनोदिनी ने पूछा - 'महेंद्र बाबू, आराम मिल रहा है' आवाज में इस तरह शहद घोल कर विनोदिनी ने तेज कनखियों से बिहारी को देख लिया। देखा, कौतुक से बिहारी की आँखें हँस रही हैं। उसको यह सब कुछ प्रहसन-सा लगा। विनोदिनी समझ गई, 'इस आदमी को ठगना आसान नहीं, इसकी पैनी निगाह से कुछ नहीं बच सकता।'

बिहारी ने हँस कर कहा - 'विनोदिनी भाभी, ऐसी तीमारदारी से बीमारी जाने की नहीं, और बढ़ जाएगी।'

विनोदिनी - 'में मूर्ख स्त्री, मुझे इसका क्या पता! आपके चिकित्सा-शास्त्र में ऐसा ही लिखा है, क्यों?'

बिहारी - 'लिखा तो है ही। सेवा देख कर अपना भी माथा दुखने लगा। लेकिन फूटे कपाल को चिकित्सा के बिना ही चंगा हो जाना पड़ता है। महेंद्र भैया का कपाल जोरदार है।'

विनोदिनी ने कपड़े का ओछा टुकड़ा रख दिया। कहा - 'न, हमें क्या पड़ी! दोस्त का इलाज दोस्त ही करे।'

16. बिहारी ने सोचा - 'ऊँहँ! दूर-दूर रहने से अब काम नहीं चलने का। चाहे जैसे हो, इसके बीच अपने लिए भी जगह बनानी पड़ेगी। इनमें से किसी को यह पसंद तो न होगा, लेकिन फिर भी मुझे रहना पड़ेगा।'

बुलावे या स्वागत की अपेक्षा किए बिना ही बिहारी महेंद्र के व्यूह में दाखिल होने लगा। उसने विनोदिनी से कहा - 'विनोद भाभी, इस शख्स को इसकी माँ ने बर्बाद किया, इसकी बीवी बर्बाद कर रही है - तुम भी उस जमात में शामिल न हो कर इसे कोई नई राह सुझाओ।'

महेंद्र ने पूछा - 'यानी?'

बिहारी - 'यानी मेरे-जैसा आदमी, जिसे कभी कोई नहीं पूछता...'

महेंद्र - 'उसको बर्बाद करो! बर्बाद होने की उम्मीदवारी इतनी आसान नहीं बचू कि दरखास्त दे दी और मंजूर हो गई।'

विनोदिनी हँस कर बोली - 'बर्बाद होने का दम होना चाहिए बिहारी, बाबू!'

बिहारी ने कहा - 'अपने आप में वह खूबी न भी हो तो पराए हाथ से आ सकती है। एक बार देख ही लो पनाह दे कर!'

विनोदिनी - 'यों तैयार हो कर आने से कुछ नहीं होता - लापरवाह रहना होता है। क्या खयाल है, भई आँख की किरकिरी! अपने इस देवर का भार तुम्हीं उठाओ न!'

आशा ने दो उँगुलियों से उसे ठेल दिया। बिहारी ने भी इस दिल्लगी में साथ न दिया।

विनोदिनी से यह छिपा न रहा कि बिहारी को आशा से मजाक करना पसंद नहीं। वह आशा पर श्रद्धा रखता है और विनोदिनी को उल्लू बनाना चाहता है, यह बात उसे चुभी।

उसने आशा से फिर कहा - 'तुम्हारा यह भिखारी देवर मुझे इंगित करके तुमसे ही दुलार की भीख माँगने आया है- कुछ दे दो न, बहन!'

आशा बहुत खीझ उठी। जरा देर के लिए बिहारी का चेहरा तमतमा उठा, दूसरे ही दम वह हँस कर बोला - 'दूसरे पर यों टाल देना ठीक नहीं है।'

विनोदिनी समझ गई कि बिहारी सब बंटाधार करके आया है - इसके सामने हथियारबंद रहना जरूरी है। महेंद्र भी आजिज आ गया। बोला - 'बिहारी, तुम्हारे महेंद्र भैया किसी व्यापार में नहीं पड़ते, जो पास है, उसी से खुश हैं वे।'

बिहारी - 'खुद न पड़ना चाहते हों चाहे, मगर किस्मत में लिखा होता है तो व्यापार की लहर बाहर से भी आ सकती है।'

विनोदिनी - 'बहरहाल, आपका तो हाथ खाली है, फिर आपकी लहर किधर से आती है?'

और व्यंग्य की हँसी हँस कर उसने आशा को दबाया। आशा कुढ़ कर चली गई। बिहारी मुँह की खा कर गुस्से में भी चुप रहा। वह जाने को तैयार हुआ, तो विनोदिनी बोल उठी - 'हताश हो कर न जाइए बिहारी बाबू, मैं आँख की किरकिरी को भेजे देती हूँ।'

विनोदिनी के उठने से बैठक टूट गई। इससे महेंद्र मन-ही-मन नाराज हुआ। महेंद्र की नाराज शकल देख कर बिहारी का आवेग उमड़ आया।

बोला - 'महेंद्र भैया, अपना सत्यानाश करना चाहते हो, करो! तुम्हारी ऐसी ही आदत रही है। लेकिन जो सरल हृदय की साध्वी तुम्हारा विश्वास करके पनाह में है, उसका सत्यानाश तो न करो। अब भी कहता हूँ, ऐसा न करो!'

कहते-कहते बिहारी का गला रुँध गया।

दबे क्रोध से महेंद्र ने कहा - 'बिहारी, तुम्हारी बात बिलकुल समझ में नहीं आती। बुझौअल रहने दो, साफ-साफ कहो।'

बिहारी ने कहा - 'में दो टूक ही कहूँगा। विनोदिनी तुम्हें जान-बूझ कर पाप की ओर खींच रही है और तुम बिना समझे कदम बढ़ा रहे हो।'

महेंद्र गरज उठा - 'सरासर झूठ है। तुम अगर भले घर की बहू-बेटी को गलत शुबहे की निगाह से देखते हो तो तुम्हारा घर के अंदर आना ठीक नहीं।'

इतने में विनोदिनी एक थाली में मिठाइयाँ ले कर आई और बिहारी के सामने रखीं। बिहारी बोला - 'अरे, यह क्या! मुझे बिलकुल भूख नहीं।'

विनोदिनी बोली - 'ऐसी क्या बात! मुँह मीठा करके ही जाना होगा।'

बिहारी बोला - 'मेरी दरखास्त मंजूर हुई शायद? आदर-सत्कार शुरू हो गया?'

विनोदिनी होठ दबा कर हँसी। कहा - 'आप जब देवर ठहरे, रिश्ते का जोर तो है। जहाँ दावा कर सकते हैं, वहाँ भीख क्या माँगना? आदर तो आप छीन कर ले सकते हैं। आप क्या कहते हैं, महेंद्र बाबू?'

महेंद्र बाबू ने कोई टिप्पणी नहीं की।

विनोदिनी - 'बिहारी बाबू, आप शर्म से नहीं खा रहे हैं या नाराजगी से! किसी और को बुलाना पड़ेगा?'

बिहारी - 'नहीं, जरूरत नहीं। जो मिला है, काफी है।'

विनोदिनी - 'मजाक? आप से तो पार पाना मुश्किल है। मिठाई से भी मुँह बंद नहीं होता।'

रात को आशा ने महेंद्र से बिहारी की शिकायत की। महेंद्र और दिन की तरह हँस कर टाल नहीं गया, बल्कि उसने साथ दिया। सुबह ही महेंद्र बिहारी के घर गया। बोला - 'बिहारी, लाख हो, विनोदिनी आखिर अपने घर की तो नहीं है। तुम सामने होते हो तो उसे कैसी झिड़क होती है।'

बिहारी ने कहा - 'अच्छा! तब तो यह ठीक नहीं। उन्हें अगर एतराज है, तो मैं सामने न जाऊँगा।'

महेंद्र निश्चिंत हुआ। यह अप्रिय काम इस आसानी से बन जाएगा वह सोच भी न सका था। बिहारी से वह डरता था।

वह उसी दिन महेंद्र के घर गया। बोला - 'विनोद भाभी, मुझे माफ कर दो!'

विनोदिनी - 'कैसी माफी?'

बिहारी - 'महेंद्र से मालूम हुआ, मैं यहाँ आ कर सामने होता हूँ, इसलिए आप नाराज हैं। इसलिए मैं माफी माँग कर रुखसत हो जाऊँगा।'

विनोदिनी - 'ऐसा भी होता है भला! मैं तो आज हूँ, कल नहीं रहूँगी - मेरी वजह से आप क्यों रुखसत होंगे? इतना झमेला होगा, यह जानती होती तो मैं यहाँ न आती...।' कह कर विनोदिनी मुँह मलिन किए बिना आँसू छिपाने को तेजी से चली गई।

बिहारी के मन में आया - 'झूठे संदेह पर मैंने नाहक ही विनोदिनी के मन को चोट पहुँचाई है।'

उस दिन मानो मुश्किल में पड़ी राजलक्ष्मी महेंद्र के पास जा कर बोली - 'महेंद्र विपिन की बहू घर जाने के लिए उतावली हो गई है।'

महेंद्र ने पूछा - 'क्यों, यहाँ उन्हें कोई तकलीफ है?'

राजलक्ष्मी - 'तकलीफ नहीं, वह कहती है, मुझ-जैसी विधवा ज्यादा दिन दूसरे के घर रहेगी, तो लोग निंदा करेंगे।'

महेंद्र क्षुब्ध हो कर बोला - 'तो यह पराया घर है!'

बिहारी बैठा था। महेंद्र ने उसे खीझी निगाह से देखा।

बिहारी ने सोचा था, 'कल मैंने जो कुछ कहा, उसमें निंदा का आभास था - शायद उसी से विनोदिनी का जी दुखा।'

पति-पत्नी दोनों विनोदिनी से रूठे रहे।

ये बोलीं - 'हमें पराया समझती हो, बहन!'

वे बोले - 'इतने दिनों में हम पराए हो गए।'

विनोदिनी ने कहा - 'हमें क्या तुम आजीवन पकड़े रहोगी?'

महेंद्र बोला - 'ऐसी जुरत कहाँ!'

आशा बोली - 'फिर ऐसे क्यों हमारे जी को चुराया तुमने?'

उस दिन कुछ भी तय न हो सका। विनोदिनी बोली - 'नहीं बहन, बेकार है, दो दिनों के लिए ममता न बढ़ाना ही ठीक है।'

कह कर अकुलाई हुई आँखों से उसने एक बार महेंद्र को देखा।

दूसरे दिन बिहारी ने आ कर कहा - 'विनोद भाभी, यह जाने की जिद क्यों? कोई कुसूर किया है - उसी की सजा?'

मुँह फेर कर विनोदिनी बोली - 'कुसूर आप क्यों करने लगे, कुसूर है मेरी तकदीर का।'

बिहारी - 'आप अगर चली जाएँ, तो मुझे यही लगता रहेगा कि मुझी से नाराज हो कर चली गई आप।'

करुण आँखों से विनती जाहिर करती हुई विनोदिनी ने बिहारी की ओर ताका। कहा - 'आप ही कहिए न, मेरा रहना उचित है?'

बिहारी मुश्किल में पड़ गया। रहना उचित है, यह बात वह कैसे कहे?

बोला - 'ठीक है, आपको जाना तो पड़ेगा ही, लेकिन दो-चार दिन रुक कर जाएँ, तो क्या हर्ज है?'

अपनी दोनों आँखें झुका कर विनोदिनी ने कहा - 'आप सब लोग रहने का आग्रह कर रहे हैं, आप लोगों की बात टाल कर जाना मेरे लिए मुश्किल है, मगर आप लोग गलती कर रहे हैं।'

कहते-कहते उसकी बड़ी-बड़ी पलकों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें तेजी से टुलकने लगीं।

बिहारी इन मौन आँसुओं से व्याकुल हो कर बोल उठा - 'महज इन कुछ दिनों में ही आपने सबको मोह लिया है, इसी से आपको कोई छोड़ना नहीं चाहता। अन्यथा न सोचें विनोद भाभी, ऐसी लक्ष्मी को चाह कर विदा भी कौन करेगा?'



आशा घूँघट काढ़े एक कोने में बैठी थी। घूँघट सरका कर वह रह-रह कर आँखें पोंछने लगी।

आइंदा विनोदिनी ने जाने की बात न चलाई।

17.बीच में यह जो झमेला खड़ा हुआ, उसे एकबारगी चुका देने की नीयत से महेंद्र ने प्रस्ताव रखा कि अगले इतवार को दमदम के बगीचे में पिकनिक कर आँ।

आशा बहुत खुश हो गई। लेकिन विनोदिनी राजी न हुई। उसके तैयार न होने से आशा और महेंद्र मायूस हो गए। उन्हें लगा, 'इन दिनों विनोदिनी न जाने क्यों दूर हट जाना चाहती है!'

तीसरे पहर बिहारी आया। विनोदिनी बोली - 'जरा देखिए तो बिहारी बाबू महेंद्र बाबू दमदम जा रहे हैं पिकनिक के लिए। मैं नहीं जाना चाहती, तो सुबह से दोनों मुझसे रूठे हैं।'

बिहारी बोला - 'नाराज होना उनका बेजा नहीं। आप साथ न गईं तो इनकी जो पिकनिक होगी, ईश्वर करे सातवें दुश्मन की भी वैसी न हो।'

विनोदिनी - 'फिर आप भी चलिए न! आप चलें, तो मैं भी चलूँगी।'

बिहारी - 'ठीक तो है। मगर बात यों है कि कर्म दरअसल कर्ता की इच्छा पर होता है। बाबू की क्या राय है।?'

बिहारी के प्रति इस पक्षपात से मालिक और मालकिन, दोनों ही भीतर-भीतर कुढ़ गए। बिहारी को साथ ले चलने की बात से महेंद्र का आधा उत्साह जाता रहा। वह बिहारी को हर तरह से यह जता देने को आतुर था कि उसकी मौजूदगी विनोदिनी को कभी पसंद नहीं - लेकिन अब तो उसे छोड़ जाना असंभव होगा।

महेंद्र ने कहा - 'बेजा क्या है, अच्छा ही तो है। लेकिन बिहारी, तुम्हारा खास ऐब है कि जहाँ जाते हो, वहाँ कोई-न-कोई हंगामा मचाने से बाज नहीं आते। या तो वहाँ आस-पास के बच्चों की जमात जुटा लगे या फिर गोरों से मार-पीट की नौबत। क्या कर बैठोगे क्या पता?'

बिहारी महेंद्र की अनिच्छा को समझ गया। मन-ही-मन हँसा। बोला - 'दुनिया में यही तो मजा है। क्या से क्या हो जाए, कहाँ कौन-सा फसाद खड़ा हो जाए - पहले से कुछ

नहीं कहा जा सकता। तो विनोद भाभी, तड़के ही चल देना पड़ेगा। मैं समय से हाजिर हो जाऊँगा।'

सामान और नौकरों के लिए एक थर्ड क्लास और उन लोगों के लिए एक सेकेण्ड क्लास की बगधी लाई गई। खासा बड़ा एक पैक बक्स लिए बिहारी ठीक समय पर हाजिर हो गया।

महेंद्र ने कहा - 'अरे यह फिर क्या उठा लाए? नौकरों वाली गाड़ी में तो अब यह आएगा नहीं।'

बिहारी बोला - 'आप परेशान न हों, मैं ठीक किए देता हूँ।'

विनोदिनी और आशा गाड़ी पर सवार हुए। बिहारी का क्या करे, महेंद्र जरा आगा-पीछा करने लगा। बिहारी ने अपना सामान गाड़ी के ऊपर पटका और आप कोच-बक्स पर जा बैठा।

महेंद्र के जी में जी आया। वह सोच रहा था, 'जाने बिहारी अंदर ही बैठ जाएगा कि क्या करेगा!'

विनोदिनी ने परेशान हो कर पूछा - 'गिर तो नहीं पड़ेंगे बिहारी बाबू?'

बिहारी बोल उठा - 'आप फिक्र न करें, गिरना या बेहोश हो जाने की भूमिका नहीं।'

जैसे ही गाड़ी खिसकी, महेंद्र ने कहा - 'न हो तो मैं ही ऊपर जाता हूँ, बिहारी अंदर आ जाए।'

आशा ने जल्दी से उसकी चादर खींची। कहा - 'नहीं, तुम नहीं जा सकते।'

विनोदिनी बोली - 'आपको आदत नहीं, क्या पता गिर-विर पड़ें।'

जोश में आ कर महेंद्र ने कहा - 'गिर पड़ूँगा? हर्गिज नहीं।'

और वह गाड़ी से बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा।

विनोदिनी - 'तोहमत आप बिहारी बाबू पर लगाते हैं, मगर हंगामा मचाने में बेजोड़ तो आप ही हैं।'

महेंद्र ने जरा मुँह लटका कर कहा - 'अच्छा एक काम करें। मैं एक और गाड़ी ले कर चलता हूँ, बिहारी यहाँ आ जाए।'

आशा ने कहा, 'तो मैं तुम्हारे ही साथ चलूँगी।'

विनोदिनी बोली - 'और मैं तब गाड़ी में से कूद पडूँ?' होते-होते झंझट आखिर निबट गया।

रास्ते भर महेंद्र बड़ा गंभीर रहा।

गाड़ी दमदम के बगीचे में पहुँच गई। नौकरों वाली गाड़ी बहुत पहले ही रवाना हुई थी, लेकिन अभी तक उसका पता न था।

शरत का सवेरा! बड़ा ही सुहाना। धूप निकल आई थी। ओस की बूँदें सूख चुकी थीं, पर निर्मल प्रकाश से पेड़-पौधे झिलमिला रहे थे। दीवार से लगी हरसिंगार की कतार थी। नीचे फूल बिछ गए थे। मह-मह खुशबू!

कलकत्ता की ईंट की ऊँची दीवार के घेरे में बाहर आ कर आशा वन की हिरनी-सी उमग उठी। विनोदिनी के साथ उसने ढेरों फूल बीने, पेड़ से शरीफे तोड़े और नीचे बैठ कर खाए। दोनों सखियों ने पोखर में देर तक स्नान किया। एक निरर्थक आनंद से इन दो नारियों ने पेड़ों की छाया और छिटकी किरणों, पोखर के पानी और कुंजों के फूल-पत्तों को पुलकित सचेतन कर दिया।

दोनों सखियाँ नहा आईं। देखा, नौकरों वाली गाड़ी अब भी नदारद है। महेंद्र बँगले के बरामदे में बिछी एक चौकी पर बैठा-बैठा उदास हो कर एक विलायती इशतहार पढ़ रहा था।

विनोदिनी ने पूछा - 'और बिहारी बाबू?'

संक्षेप में महेंद्र बोला - 'पता नहीं।'

विनोदिनी - 'चलिए, उन्हें ढूँढें।'

महेंद्र - 'आखिर उन्हें कोई चुरा कर तो ले नहीं जाएगा! ढूँढें बिना भी मिल जाएँगे।'

विनोदिनी - 'मगर हो सकता है, आपकी फिक्र से वह बेहाल हो रहे हों। चल कर उन्हें दिलासा ही दे आएँ।'

तालाब के किनारे बँधा हुआ विशाल बरगद था। उसी के चौतरे पर बिहारी अपना पैक-बक्स खोल कर मिट्टी के तेल का चूल्हा जला कर पानी गरम कर रहा था। जैसे ही लोग पहुँचे, उसने सबको चौतरे पर बिठा कर एक-एक प्याला गरम चाय और तश्तरी में दो-एक मिठाइयाँ दे कर उनकी खातिर की। विनोदिनी बार-बार कहने लगी - 'गनीमत है कि बिहारी बाबू सारा सरंजाम साथ ले आए हैं! वरना चाय न मिलती तो क्या हाल होता महेंद्र बाबू का।'

चाय मिली, तो महेंद्र जी उठा। फिर भी बोला - 'यह सब बिहारी की ज्यादाती है। आए हैं हजरत पिकनिक को और यहाँ भी बदस्तूर सारा इंतजाम उठा लाए हैं। इससे मजा नहीं रहता!'

तपी दोपहरी की हवा पत्तों में मर्मराहट ला कर बहती रही, तालाब के बाँध पर जामुन की डालों पर कोयल रह-रह कर कूकती रही। विनोदिनी अपने बचपन के किस्से सुनाने लगी - माँ-बाप की बात, छुटपन की सखी-सहेलियों की चर्चा। अचानक उसके माथे पर का पल्ला खिसक पड़ा। विनोदिनी की आँखों में कौतुक का जो तीखा कटाक्ष देख पैनी निगाहों वाले बिहारी के मन में आज तक तरह-तरह की शंकाएँ उठती रही थीं, वह श्याम चमक जब एक शांत सजल रेखा से मंद पड़ गई, तो बिहारी ने मानो और ही नारी को देखा। लजीली सती की नाईं विनोदिनी एकांत भक्ति से पति की सेवा कर रही है, मंगलमयी माता के समान संतान को अपनी गोद में लिए हुए है - पहले यह छवि क्षण के लिए भी कभी बिहारी के मन में न आई - आज मानो जरा देर के लिए रंगमंच का परदा उठ गया और अंदर का एक मंगल दृश्य उसे दिखाई दिया। बिहारी ने सोचा, 'विनोदिनी बाहर से विलासिनी युवती तो है, पर उसके अंतर्मन में पूजा-निरत एक नारी तपस्या में लीन है।' एक लंबी साँस तोड़ कर बिहारी ने मन-ही-मन कहा - 'सही-सही अपने को मनुष्य आप भी नहीं जानता - अंतर्यामी ही जानते हैं - परिस्थितिवश जो रूप बाहर बन जाता है, दुनिया उसी को सच समझती है।' बिहारी ने बातों के सिलसिले को टूटने न दिया, प्रश्नों से उसे जगाए रहा।

आज सुबह ही जगने के जुल्म से थके हुए महेंद्र की नींद पाँच बजे खुली। आजिजी से बोला - 'अब चल देना चाहिए।'

विनोदिनी ने कहा - 'थोड़ी देर और रुकें तो?'

सामान सहेजने में अँधेरा हो आया। नौकरों ने इतने में खबर दी, किराए की गाड़ी न जाने कहाँ गायब है। ढूँढ़े न मिली। गाड़ी बगीचे के बाहर खड़ी थी। दो गोरे जबर्दस्ती उसे ले कर स्टेशन चल दिए।

दूसरी गाड़ी ठीक करने के लिए नौकर भेजा गया। कुढ़ा हुआ महेंद्र बार-बार मन में कहने लगा - 'आज का दिन मुफ्त में बर्बाद हो गया।' ऐसी नौबत आ गई कि अपनी अधीरता वह छिपा न सका।

अँजोरिया का चाँद धीरे-धीरे झुरमुटों की ओर से खुले आकाश में आया। सुनसान अकंप बगीचा छाँह-जोत से झिलमिला उठा। इस माया-मंडित धरती पर आज विनोदिनी ने अपने को न जाने किस रूप में अनुभव किया। उसने जब तरु-वीथिका में आशा को जकड़ लिया, तो उसमें प्रणय की बनावट जरा भी न थी। आशा ने देखा, विनोदिनी की आँखों से आँसू बह रहे हैं। आशा ने पीड़ित होकर पूछा - "भई आँख की किरकिरी, तुम रो क्यों रही हो?"

विनोदिनी बोली - "कुछ नहीं बहन, सब ठीक है। आज का दिन मुझे बड़ा भला लगा।"

आशा ने पूछा - "किस बात से इतना भला लगा?"

विनोदिनी बोली - "मुझे लगता है, मानो मैं मर गई हूँ, मानो परलोक में आई हूँ - यहाँ मानो मुझे मेरा सर्वस्व मिल सकता है।"

अचरज में पड़ी आशा यह सब-कुछ न समझ सकी। मौत की बात सुनकर दुखी होकर कहा - "छिः, ऐसा नहीं कहते, बहन!"

गाड़ी मिली। बिहारी फिर कोच-बक्स पर जा बैठा। विनोदिनी चुपचाप ही बाहर की तरफ देखती रही - चाँदनी में अवाक पेड़ों की पाँत दौड़ते हुए घने छाया-प्रवाह की तरह उसकी आँखों से हो कर गुजरने लगी। आशा गाड़ी के एक कोने में सो गई और महेंद्र सारी राह उदास बैठा रहा।

18. पिकनिक के दिन जो वाक्या गुजरा उसके बाद फिर महेंद्र में विनोदिनी को अपनाने की चाहत बढ़ने लगी। लेकिन दूसरे ही दिन राजलक्ष्मी को फलू हो गया। बीमारी कुछ खास न थी, फिर भी उन्हें तकलीफ और कमजोरी काफी थी। विनोदिनी रात-दिन उनकी सेवा में लगी रहती।

महेंद्र बोला - 'माँ के सेवा-जतन में यों दिन-रात एक करोगी, तो तुम्हीं बीमार पड़ जाओगी।'

बिहारी ने कहा - 'आप नाहक परेशान हैं, भैया! ये सेवा कर रही है, करने दो। दूसरा कोई ऐसी सेवा थोड़े ही करेगा।'

महेंद्र बार-बार मरीज के कमरे में आने-जाने लगा। एक आदमी काम कुछ नहीं करता, लेकिन हर घड़ी पीछे लगा फिरता है, यह बात विनोदिनी को अच्छी न लगी। तंग आ कर उसने दो-तीन बार कहा - 'महेंद्र बाबू, यहाँ बैठे रह कर आप क्या कर रहे हैं? जाइए, नाहक क्यों कॉलेज से गैर-हाजिर होते हैं?'

महेंद्र उसके पीछे लगा डोलता है, इसका विनोदिनी को नाज था। खुशी थी। लेकिन फिर भी ऐसा क्या, बीमार माँ के बिस्तर के पास भी क्षुब्ध बैठे रहना - उसका धीरज टूट जाता, घृणा होती। अपने ऊपर किसी काम की जिम्मेदारी रहने पर वह और किसी बात का खयाल नहीं करती। जब तक खिलाना-पिलाना, रोगी की सेवा, घर के काम-धंधे की जरूरत रहती - किसी ने उसे कभी ढीला-ढाला नहीं देखा और खुद भी काम-काज के समय निकम्मापन पसंद नहीं करती।

कभी-कभी जरा देर को, माँ का हाल पूछने के लिए बिहारी आ जाया करता। कमरे में कदम रखते ही वह समझ जाता कि काहे की जरूरत है, कहाँ कौन-सी चीज की कमी है, उसकी आँखें तुरंत ताड़ जातीं और लमहे भर में सब कुछ ठीक करके वह कमरे से निकल जाता। विनोदिनी समझ रही थी कि मेरी सेवा को बिहारी श्रद्धा की नजर से देखता है। लिहाजा बिहारी के आने से उसे जैसे विशेष पुरस्कार मिलता था।

महेंद्र नियम से कॉलेज जाने लगा। एक तो उसका मिजाज ही बड़ा कड़वा हो गया, उस पर यह कैसा परिवर्तन! समय पर खाना तैयार नहीं होता, साइस जाने कहाँ गायब रहता, मोजे का छेद धीरे-धीरे बड़ा होता जाता। ऐसी गड़बड़ में उसे पहले - जैसा आनंद नहीं आता। जब जिस चीज की जरूरत हो, उसी क्षण उसे पा जाने से आराम कैसा होता है, इस बारे में वह कई दिन पहले ही स्वाद चख चुका था। अब उसकी कमी से आशा की जहालत में मजा खत्म हो गया - 'चुन्नी, मैंने बाहर तुमसे कहा कि मेरे नहाने के पहले ही कुरते में बटन लगा रखना, अचकन, पतलून ठीक करके रखना - मगर यह कभी नहीं होता। नहा कर बटन लगाने और कपड़े ढूँढ़ने में ही मेरा घंटा भर निकल जाता है।

शर्मसार हो कर आशा कहती - 'मैंने बैरे से कह दिया था।'

'...बैरे से कह दिया था! खुद कर लेतीं तो कौन-सा गुनाह हो जाता! कभी जो तुमसे कोई काम हो!'

आशा पर मानो गाज गिरी। ऐसी झिड़की उसे कभी नहीं सुननी पड़ी। उसकी जबान पर या मन में यह जवाब न आया कि मेरी इस जहालत के तुम्हीं तो जिम्मेदार हो। उसे तो मालूम ही न था गृह-कार्य की कुशलता अभ्यास के अनुभव से आती है। वह सोचा करती थी कि अपनी अयोग्यता और निर्बुद्धिता के कारण ही मैं कोई भी काम ठीक से नहीं कर पाती। जब-जब महेंद्र ने विनोदिनी की उपमा दे कर आशा को धिक्कारा है, उसने उसे विनम्रता से स्वीकारा है।

कभी-कभी आशा बीमार सास के आस-पास चक्कर काटती, कभी-कभी शरमायी-सी दरवाजे के पास खड़ी हो जाती। उसकी इच्छा होती कि अपने आपको वह गृहस्थी के उपयुक्त बनाए, कुछ काम करके दिखाए, परंतु उससे कोई भी कैसी मनोवेदना उसमें भीतर-ही-भीतर बढ़ रही थी, लेकिन अपनी अस्पष्ट व्यथा और अजानी आशंका को वह साफ समझ नहीं पाती। वह खूब महसूस कर रही थी कि उसे चतुर्दिक का सब कुछ बर्बाद हो रहा है। लेकिन यह सब कैसे बना था और नष्ट ही कैसे हो रहा है और कैसे इसका प्रतिकार हो - वह नहीं जानती। रह-रह कर यही कहने को जी चाहता कि मैं अयोग्य हूँ, - मेरी मूढ़ता की तुलना नहीं हो सकती।

अब तक तो पति-पत्नी दोनों घर के एक कोने में दुबके कभी बोल-बतिया कर कभी यों ही चुपचाप मजे में दिन बिताते रहे। मगर जब विनोदिनी न होती तो आशा के साथ अकेले बैठ कर महेंद्र बात ही न कर पाता।

महेंद्र ने बैरे से पूछा - 'किसकी चिट्ठी है?'

'बिहारी बाबू की।'

'किसने दी है?'

'बहूजी (विनोदिनी) ने।'

'देखूँ जरा।' चिट्ठी ले ली। जी में आया, फाड़ कर उसे पढ़े। उलट-पलट कर देखा, फिर बैरे की तरफ फेंक दिया।

बरामदे में कुछ देर चहलकदमी करके कमरे में आ कर महेंद्र ने देखा, कमरे की दीवार पर टँगी एक तस्वीर की डोरी टूटने वाली है और इसकी वजह से तस्वीर टेढ़ी हो गई

है। आशा को डाँटते हुए महेंद्र ने कहा - 'तुम कुछ भी नहीं देखतीं। इस तरह सारी चीजें बर्बाद हो रही हैं।'

दमदम के फूलों का जो गुच्छा बना कर विनोदिनी ने पीतल की फूलदानी में सजाया था, वह आज भी वहीं सूखा पड़ा है। महेंद्र कभी इन बातों पर गौर नहीं करता था, आज उसकी निगाह उस पर पड़ी। बोला - 'जब तक विनोदिनी आ कर फेंक न दे, यह पड़ा ही रहेगा।'

उसने फूल-समेत फूलदानी उठा कर बाहर फेंक दी। ठन-ठन बजती वह सीढ़ी पर लुढ़कती जा पड़ी। 'आशा मेरे मन के लायक क्यों नहीं रहती, क्यों वह मेरे मन-मुताबिक काम नहीं करती?'

महेंद्र बाहर निकला। जा कर फूलदानी उठा लाया। कोने में एक मेज पड़ी सीढ़ी पर बैठ कर उसी टेबल पर कोहनी टिकाए हाथों पर सिर रखे सोया रहा।

अँधेरा होने पर कमरे में बत्ती आई, लेकिन आशा नहीं। महेंद्र छत पर जोर-जोर से चहल-कदमी करने लगा। रात के नौ बजे, महेंद्र के सूने कमरे में आधी रात का सन्नाटा छा गया - आशा फिर भी न आई। महेंद्र ने बुलावा भेजा। सकुचाई-सी आ कर वह छत पर दरवाजे के पास ठिठक गई। महेंद्र पास गया - उसे छाती से लगा लिया। पति के कलेजे से लग कर वह जोरों से रो पड़ी - अपने को जब्त न कर सकी, आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। कलेजे से लगा कर महेंद्र ने उसके बालों को चूमा - मौन आसमान के सितारे चुपचाप देखते रहे।

रात को महेंद्र ने बिस्तर पर बैठ कर बताया - 'कॉलेज में मेरी रात की ड्यूटी लगी है, कुछ दिनों के लिए मुझे कॉलेज के ही आस-पास कहीं डेरा लेना पड़ेगा।'

आशा सोचने लगी - 'गुस्सा शायद रह ही गया है? मुझ पर नाराज हो कर तो नहीं जा रहे? आखिर निगुनी मैं। पति को घर से रुखसत करके ही रही! मेरा तो मर जाना ही अच्छा था।'

लेकिन महेंद्र के हाव-भाव में गुस्से का कोई लक्षण न दीखा। बड़ी देर तक वह चुप रहा। आशा के मुखड़े को कलेजे से लगा कर उँगली से बालों को चीरते-चीरते उसके जूड़े को ढीला कर दिया। पहले प्यार से महेंद्र इसी तरह आशा का जूड़ा खोल दिया करता था - आशा इस पर एतराज करती थी। आज मगर उसने चूँ भी न की।



अचानक उसके कपाल पर आँसू की एक बूँद टपक पड़ी। महेन्द्र ने उसका मुँह अपनी ओर फेर कर स्नेह से रुँधे स्वर में पुकारा - 'चुन्नी!'

आशा को कोई जवाब न मिला। अपने कोमल हाथों से उसने कस कर महेन्द्र को दबा लिया। महेन्द्र ने कहा - 'मुझे गलती हो गई, माफ कर दो।'

अपने फूल-से सुकुमार हाथ से महेन्द्र के होंठों को दबाती हुई वह बोली - 'छिः, ऐसा न कहो! तुमने कोई कसूर नहीं किया। कसूर मेरा है। मुझे दासी के समान फटकारो। मुझे अपने पाँवों में रहने लायक बना लो!'

जिस दिन जाना था, सुबह जगते समय महेन्द्र ने कहा - 'चुन्नी, मेरी रतन, तुम्हें मैं अपने हृदय में सबसे ऊपर रखूँगा। कोई तुमसे आगे नहीं जा सकेगा।'

कलेजे को कड़ा करके सब तरह का त्याग करने को तैयार हो कर उसने पति से अपनी एक निहायत मामूली-सी माँग की। बोली - 'मुझे रोज-रोज चिट्ठी लिखना!'

महेन्द्र ने पूछा - 'तुम भी लिखोगी?'

आशा ने कहा - 'मैं क्या लिखना जानती हूँ?'

उसके कान के पास की लट को सरकाता हुआ महेन्द्र बोला - 'तुम अक्षय कुमार दत्ता से भी अच्छा लिख सकती हो - जिसे चारुपाठ कहते हैं!'

आशा ने कहा - 'मजाक रहने दो, हाँ।'

जाने के पहले आशा महेन्द्र का सामान सहेजने लगी। मोटे-मोटे गरम कपड़ों की तह बनाना कठिन था, बक्स में सबका सामान और भी कठिन। दोनों ने मिल कर दबा-दुबूकर जो एक बक्स में आ जाता, उसे दो बक्सों में रखा। फिर भी भूल से जो चीजें छूट गईं, उनकी कई गठरियाँ अलग से बन गईं। इससे आशा शर्म महसूस करती रही, तो भी आपस की छीना-झपटी और हँस-हँस कर एक-दूसरे को दोषी ठहराने में आनंद के पिछले दिन लौट आए। यह तैयारी विदाई की है, जरा देर के लिए आशा यह भूल गई। साईंस कम-से-कम दस बार जता गया कि गाड़ी तैयार है, मगर कौन सुनता है। अंत में खिन्न हो कर बोला - 'खोल दो घोड़ों को।'

सुबह से तीसरा पहर हो गया और अब साँझ होने को आई। तब कहीं एक-दूसरे की सँहत का खयाल रखने की ताकीद करके, नियम से चिट्ठी लिखने का बार-बार वादा कराके भारी हृदय लिए दोनों जुदा हुए।

दो दिन हुए, राजलक्ष्मी उठने-बैठने लगी हैं। शाम को बदन पर एक मोटी चादर लपेटे विनोदिनी के साथ ताश खेल रही थी। आज उसे कोई हरारत न थी। महेंद्र कमरे में आया। विनोदिनी की तरफ उसने बिलकुल नहीं देखा। माँ से बोला - 'माँ, कॉलेज में मेरी रात की ड्यूटी लगी है। यहाँ से आते-जाते नहीं बनता - कॉलेज के पास ही एक डेरा ले लिया है। आज से वहीं रहूँगा।'

राजलक्ष्मी अंदर से रूठ कर बोलीं - 'जाओ, पढ़ाई में हर्ज होगा, तो रह भी कैसे सकते हो!'

बीमारी तो उनकी जाती रही थी, लेकिन जैसे ही उन्होंने सुना कि महेंद्र जा रहा है, अपने को बीमार और कमजोर महसूस करने लगीं। विनोदिनी से कहा - 'जरा तकिया तो इधर खिसका दो, बिटिया!'

और वह तकिए का सहारा ले कर लेट गई। विनोदिनी धीरे-धीरे उनके बदन पर हाथ फेरने लगी।

महेंद्र ने उनके कपाल पर हाथ रखा, नब्ज देखी। माँ ने अपनी कलाई हटा ली। कहा - 'नब्ज से क्या खाक पता चलता है! तू फिक्र मत कर, मैं ठीक हूँ।'

कह कर उन्होंने बड़ी बमुश्किल करवट बदली।

विनोदिनी से महेंद्र ने कुछ न कहा। राजलक्ष्मी को प्रणाम करके वह चला गया।

19. विनोदिनी ने सोचा, 'आखिर माजरा क्या है? मान या गुस्सा या डर, पता नहीं क्या? मुझे यह दिखाना चाहते हैं कि वह मेरी परवाह नहीं करते? बाहर जा कर रहेंगे? अच्छा, यही देखना है, कितने दिन?'

लेकिन खुद उसके मन में भी बेचैनी लगने लगी।

वह रोज ही उस पर नया फंदा फेंका करती, तरह-तरह के तीरों से वेधा करती थी। उस काम के चुक जाने से वह छटपटाने लगी। घर का नशा ही उतर गया। महेंद्र-विहीना आशा उसके लिए बिलकुल स्वाद-रहित थी। आशा को महेंद्र जितना प्यार करता था,

वह विनोदिनी के प्यार के भूखे हृदय को मथा करता था। जिस महेंद्र ने उसके जीवन की सार्थकता को चौपट कर दिया, जिसने उस जैसी नारी की उपेक्षा करके आशा - जैसी मंदबुद्धि बालिका को अपनाया - उस महेंद्र को विनोदिनी चाहती है या उससे चिढ़ती है, उसे इसकी सजा देगी या अपने हृदय में एक आग लहकाई है, वह आग ईर्ष्या की है या प्रेम की या दोनों की मिलावट है, यह वह सोच न पाती। वह मन-ही-मन तीखी हँसी हँस कर कहती - 'मुझ-जैसी गत किसी भी स्त्री की नहीं हुई होगी। मैं यही नहीं समझ सकी कि मैं मारना चाहती हूँ कि मरना।' लेकिन चाहे जिस वजह से भी हो, जलने के लिए या जलाने के लिए, महेंद्र की उसे नितांत आवश्यकता थी। गहरा निःश्वास छोड़ती हुई विनोदिनी बोली - 'बच्चू जाएगा कहाँ? उसे आना पड़ेगा। वह मेरा है।'

घर की सफाई के बहाने शाम को आशा महेंद्र के कमरे में उसकी किताबें, उसकी तस्वीर आदि सामानों को छू-छा रही थी, अपने अँचरे से उन्हें झाड़-पोंछ रही थी। महेंद्र की चीजों को बार-बार छू कर, कभी उठा कर कभी रख कर अपने बिछोह की साँझ बिता रही थी। विनोदिनी धीरे-धीरे उसके पास आ कर खड़ी हो गई। आशा शर्मा गई। छूना तो उसने छोड़ दिया और कुछ ऐसा जताया मानो वह कुछ खोज रही है। विनोदिनी ने हँस कर पूछा - 'क्या हो रहा है, बहन?'

होठों पर हल्की हँसी ला कर बोली - 'कुछ भी नहीं।'

विनोदिनी ने उसे गले लगाया। पूछा - 'भई आँख की किरकिरी, देवर जी इस तरह घर से चले क्यों गए?'

विनोदिनी के इस सवाल से ही आशा शंकित हो उठी। कहा - 'तुम्हें तो मालूम है। जानती ही हो, काम का दबाव रहता है।'

दाहिने हाथ से उसकी ठुड्डी उठा कर, मानो करुणा से गल गई हो इस तरह सन्न हो कर उसने आशा को देखा और लंबी साँस ली।

आशा का दिल बैठ गया। वह अपने को अबोध और विनोदिनी को चालाक समझा करती थी। विनोदिनी के चेहरे का भाव देख कर उसके लिए सारा संसार अंधकारमय हो गया। विनोदिनी से साफ-साफ कुछ पूछने की उसकी हिम्मत न पड़ी। दीवार के पास एक सोफे पर बैठ गई। विनोदिनी भी बगल में बैठी। उसे अपने कलेजे से जकड़ लिया। सखी के इस आलिंगन से वह अपने आपको सम्हाल न सकी। दोनों के आँसू

झरने लगे। दरवाजे पर अंधा भिखारी मँजीरा बजाता हुआ गा रहा था, 'तरने को अपने चरणों की तरणी दे माँ, तारा!'

बिहारी महेंद्र की तलाश में आया था। दरवाजे पर से ही उसने देखा, आशा रो रही है और विनोदिनी उसे अपनी छाती से लगाए उसके आँसू पोंछ रही है। देख कर बिहारी वहाँ से खिसक गया। बँगले के अँधेरे कमरे में जा कर बैठ गया। दोनों हथेलियों से अपना सिर दबा कर सोचने लगा, 'आशा आखिर रो क्यों रही है? जो बेचारी स्वभाव से ही कोई कसूर करने में असमर्थ है, ऐसी नारी को भी जो रुलाए उसे क्या कहा जाए।' विनोदिनी की उस तरह की सांत्वना, निस्वार्थ सखी-प्रेम को देख कर अभिभूत हो गया।

वह बड़ी देर तक अँधेरे में बैठा रहा। अंधे भिखारी का गाना जब बंद हो गया तो वह पैर पटक कर खाँसता हुआ महेंद्र के कमरे की तरफ बढ़ा। द्वार पर पहुँचा भी न था कि आशा घूँघट काढ़ कर अंतःपुर की ओर भाग गई।

अंदर पहुँचते ही विनोदिनी ने पूछा - 'अरे, क्या आपकी तबीयत खराब है, बिहारी बाबू?'

बिहारी - 'नहीं तो।'

विनोदिनी - 'फिर आँखें ऐसी लाल क्यों हैं?'

बिहारी ने इस बात का जवाब नहीं दिया। पूछा - 'विनोद भाभी, महेंद्र कहाँ गया?'

विनोदिनी गंभीर हो कर बोली - 'सुना है, कॉलेज में काम ज्यादा है। इसलिए उन्होंने वहीं कहीं पास में डेरा ले लिया है। अच्छा, मैं चलूँ!'

अनमना बिहारी दरवाजे के सामने राह रोक कर खड़ा हो गया था। चौंक कर वह जल्दी से हट गया। शाम के वक्त बाहर से सूने कमरे में इस तरह विनोदिनी से बात करना लोगों को अच्छा न लगेगा।- अचानक इसका ध्यान आया। उसके जाते-जाते बिहारी इतना कह गया - 'विनोद भाभी, आशा का खयाल रखिएगा। सीधी है बेचारी। उसे किसी को न तो चोट पहुँचाना आता है, न चोट से अपने को बचाना।'

अँधेरे में बिहारी विनोदिनी का चेहरा न देख पाया - उसमें ईर्ष्या के भाव जग आए थे। आज बिहारी पर नजर पड़ते ही वह समझ गई थी कि आशा के लिए उसका हृदय दुःखी है। विनोदिनी आप कुछ नहीं! उसका जन्म आशा को सुरक्षित रखने, उसकी

राहों के काँटों को बीनने के लिए ही हुआ है! श्रीमान महेंद्र बाबू आशा से विवाह करें, इसीलिए किस्मत की मार से विनोदिनी को बारामात के बर्बर बंदर के साथ वनवास लेना पड़ेगा। और श्रीमान बिहारी बाबू से आशा की आँखों में आँसू नहीं देखे जाते, सो विनोदिनी को अपना दामन उठाए सदा तैयार रहना पड़ेगा! वह महेंद्र और बिहारी को एक बार अपने पीछे की छाया के साथ धूल में पटक कर बताना चाहती है कि यह आशा कौन है, और कौन है विनोदिनी! दोनों में कितना फर्क है! दुर्भाग्य से विनोदिनी अपनी प्रतिभा को किसी पुरुष-हृदय के राज्य में विजयी बनाने का अवसर नहीं पा सकी, इसलिए उसने जलता शक्तिशैल उठा कर संहार मूर्ति धारण की।

बड़े ही मीठे स्वर में विनोदिनी बिहारी को कहती गई - 'आप बेफिक्र रहें, बिहारी बाबू! मेरी आँख की किरकिरी के लिए इतनी चिंता करके आप नाहक इतना कष्ट न उठाएँ।'

20. जल्दी ही महेंद्र को एक चिट्ठी मिली। उस पर पहचाने अक्षर देख कर वह चौंक गया। दिन में झमेलों के कारण उसने उसे खोला नहीं - कलेजे के पास जेब में डाल दिया। कॉलेज के लेक्चर सुनते हुए, अस्पताल का चक्कर काटते हुए यक-ब-यक उसे ऐसा लग आता कि उसके कलेजे के घोंसले में मुहब्बत की एक चिड़िया सो रही है। उसे जगाया नहीं कि उसकी मीठी चहक कानों में गूँज उठेगी।

शाम को अपने सूने कमरे में महेंद्र लैंप की रोशनी में आराम से कुर्सी पर बैठा। अपनी देह के ताप से तपी उस चिट्ठी को बाहर निकला। देर तक उसने उसे खोला नहीं, मगर गौर से देखता रहा। उसे पता था कि खत में खास कुछ है नहीं। ऐसी संभावना ही नहीं कि आशा अपने मन की बात सुलझा कर लिख सकेगी। उसके टेढ़े-मेढ़े हरफों और आड़ी-तिरछी पंक्तियों से उसके मन के भावों की कल्पना कर लेनी होगी। आशा के कच्चे हाथों, बड़े जतन से लिखे अपने नाम में महेंद्र को एक रागिनी सुनाई पड़ी - 'साध्वी नारी के मन के गहन बैकुंठ से उठने वाला पावन प्रेम-संगीत।'

दो ही चार दिनों की जुदाई से महेंद्र के मन का वह अवसाद चला गया। सरल आशा के नवीन प्रेम की स्मृति फिर ताजा हो गई। इन दिनों गिरस्ती की रोजमर्रा की असुविधाएँ उसे खिड़ाने लगी थीं, अब वह सब मिट गया, बस कर्म और कारणहीन एक विशुद्ध प्रेमानंद की जोत में आशा की मानसी मूर्ति उसके मन में जीवंत हो उठी।

महेंद्र ने लिफाफे को इत्मीनान से खोला। उसमें से चिट्ठी निकाल कर अपने गाल और कपाल से लगाई। महेंद्र ने जो खूशबू कभी आशा को भेंट की थी, अकुलाए निःश्वास-सी उसी की महक खत में से निकल कर महेंद्र के प्राणों में पैठ गई।

खत खोल कर पढ़ा। अरे, जैसी टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियाँ हैं, वैसी भाषा तो नहीं है! हरफ कच्चे, मगर उनसे बातों का मेल कहाँ? लिखा था-

'प्रियतम, जिसे भूलने के लिए घर से चल दिए, इस लिखावट से उसकी याद क्यों दिलाऊँ? जिस लता को मरोड़ कर माटी में फेंक दिया, किस हया से वह फिर धड़ को जकड़ कर उठने की कोशिश करे! जाने वह मिट्टी में मिल कर मिट्टी क्यों न हो गई!

'लेकिन इससे तुम्हारा क्या नुकसान है नाथ, लमहे भर को याद ही आ गया तो! उससे जी को चोट भी कितनी लगेगी! मगर तुम्हारी उपेक्षा काँटे-सी मेरे पंजर में चुभ कर रह गई है! तुम जिस तरह भूल बैठे, मुझे भी उसी तरह भुलाने की तरकीब बता दो।'

'नाथ, तुमने मुझे प्यार किया था, यह क्या मेरा ही कसूर था! ऐसे सौभाग्य की मैंने स्वप्न में भी आशा की थी क्या? मैं कहाँ से आई, मुझे कौन जानता था? मुझे नजर उठा कर न देखा होता, मुझे अगर यहाँ मुफ्त की बाँदी बन कर रहना होता, तो मैं क्या तुम्हें दोष दे सकती थी? जाने मेरे किस गुण पर तुम खुद ही बिना मेघ के बिजली ही कड़की, तो उस बिजली ने सिर्फ जलाया ही क्यों? तन-मन को बिलकुल राख क्यों न कर डाला?

'इन दो दिनों में बेहद सब्र किया, बहुत सोचती रही, लेकिन एक बात न समझ सकी कि यहाँ रह कर भी क्या तुम मुझे ठुकरा नहीं सकते थे? मेरे लिए भी क्या घर छोड़ कर जाने की जरूरत थी? क्या मैं तुम्हें इतना घेरे हूँ? मुझे अपने कमरे के कोने में, दरवाजे के बाहर फेंक देने पर भी क्या मैं तुम्हारी नजर में आती? यही था, तो तुम फिर गए क्यों? मेरे कहीं जाने का क्या कोई उपाय न था? बह कर आई थी, बह कर चली जाती...'

यह चिट्ठी कैसी! भाषा किसकी थी, महेंद्र को समझते देर न लगी। महेंद्र उस पत्र को लिए स्तंभित रहा।

बड़ी देर तक सोचता रहा। खत को उसने कई बार पढ़ा। कुछ दिनों तक जो दूर के आभास की तरह रहा, आज वह साफ प्रकट होने लगा। उसकी जिंदगी के आसमान

के एक कोने में जो धूमकेतु छाया था, आज उसकी उठी हुई पूँछ आग की रेखाओं में जलती हुई दिखाई पड़ी।

चिट्ठी यह असल में विनोदिनी की है। भोली आशा ने इसे अपनी बात समझ कर लिखा है। पहले जिन बातों को उसने कभी सोचा नहीं, विनोदिनी के लिखाने से वे ही बातें उसके मन में जाग उठीं। जो नई वेदना पैदा हुई, उसे इस खूबी के साथ आशा तो हर्गिज जाहिर नहीं कर सकती थी। वह सोचने लगी, 'सखी ने मेरे मन की बात को ऐसा ठीक-ठीक कैसे समझ लिया! और, इतना ठीक से जाहिर कैसे किया!' वह अपनी अंतरंग सखी को और भी मजबूत सहारे की तरह पकड़ बैठी। क्योंकि जो बात उसके मन में है, उसकी भाषा उसकी सखी के पास है - इतनी बेबस थी वह!

महेंद्र कुर्सी से उठा। भवों पर बल डाला। विनोदिनी पर क्रोध करने की कोशिश की। मगर बीच में आशा पर गुस्सा आ गया। आशा की मूर्खता तो देखो, पति पर यह कैसा जुल्म! वह फिर बैठ गया और इस बात के सबूत में उस खत को फिर से पढ़ गया। अंदर-ही-अंदर खुशी होने लगी। यह समझ कर उसने चिट्ठी को पढ़ने की बहुत चेष्टा की, मानो वह आशा की ही लिखी हो। लेकिन इसकी भाषा किसी भी तरह से भोली आशा की याद नहीं दिलाती। दो ही चार पंक्तियाँ पढ़ते ही सुख से पागल कर देने वाली एक झाग भरी शराब-जैसा संदेह मन को ढाँप लेता। प्रेम की इस प्रतीति ने महेंद्र को मतवाला बना दिया। उसे लगने लगा चाहे खुद के प्रति हिंसा करके ही मन को किसी और तरफ लगा दे। उसने मेज पर जोरों का मुक्का मारा और उछल कर खड़ा हो गया। बोला - 'हटाओ, चिट्ठी को जला डालें।' चिट्ठी को वह लैंप के करीब ले गया। जलाया नहीं, फिर एक बार पढ़ गया। अगले दिन नौकर कागज की बहुत-सी राख उठा ले गया था, लेकिन यह राख आशा की चिट्ठियों की न थी, उसके उत्तर की कई अधूरी कोशिशों की राख थी, जिन्हें अंत में महेंद्र ने जला दिया था।

21. इस बीच और एक चिट्ठी आ पहुँची -

'तुमने मेरे पत्र का जवाब नहीं दिया? अच्छा ही किया, सही बात लिखी तो नहीं जाती; तुम्हारा जो जवाब है, उसे मैंने मन में समझ लिया। भक्त जब अपने देवता को पुकारता है तो देवता क्या जबान से कुछ कहते हैं? लगता है, दुखिया की तुलसी को चरणों में जगह मिल गई।'

'लेकिन भक्त की पूजा से कहीं शिव की तपस्या टूटती हो तो मेरे हृदय के देवता, नाराज न होना! वरदान दो या न दो, आँखें उठा कर निहारो या न निहारो, जान सको



या न जान सको - पूजा किए बिना भक्त की दूसरी गति नहीं। इसलिए आज भी दो पंक्तियाँ लिख भेजती हूँ - हे मेरे पत्थर के देवता! तुम अडिग ही रहो!

महेंद्र फिर जवाब लिखने बैठा। लेकिन पत्र को आशा को लिखते हुए कलम की नोक पर जवाब विनोदिनी का आ जाता। चालाकी से इधर-उधर की हाँकते उससे लिखते हुए नहीं बनता। लिख-लिख कर बहुत-से पन्ने फाड़ डाले। एक लिखा भी गया तो उसे लिफाफे में भर कर आशा का नाम लिखते हुए अचानक किसी ने उसकी पीठ पर चाबुक जमाया- 'बेईमान! विश्वस्त बालिका से इस तरह दगा!' महेंद्र ने पत्र को टुकड़े करके फेंक दिया और बाकी रात मेज पर दोनों हथेलियों में मुँह छिपाए अपने को मानो अपनी ही नजर से छिपाने की कोशिश करता रहा।

तीसरा पत्र! 'रूठना जो कतई नहीं जानता, वह भी क्या प्यार करता है? अपने प्यार को अनादर और अपमान से बचाए न रख सकूँ तो वह तुम्हें दूँगी कैसे?'

'शायद तुम्हारे मन को ठीक-ठीक समझ नहीं पाई हूँ, तभी इतनी हिम्मत कर सकी हूँ। तुम छोड़ गए तो भी मैंने ही बढ़ कर चिट्ठी लिखी; जब तुम चुप हो गए थे, तब भी मन की कह गई हूँ। मगर तुम्हारे साथ अगर गलती की है, तो वह भी क्या मेरा ही कसूर है? शुरू से आखिर तक सारी बातें एक बार दुहरा कर देखो तो सही कि मैंने जो कुछ समझा था, वह तुम्हीं ने नहीं समझाया क्या?'

'चाहे जो हो, गलत हो या सही, जो लिखा है, वह मिटने का नहीं, जो दिया है, वह वापिस नहीं ले सकूँगी, यही शिकायत है। छिः-छिः ऐसी शर्म भी नारी के नसीब में आती है। लेकिन इससे यह हर्गिज न समझना कि जो प्यार करती है, वह अपने प्यार को बार-बार अपमानित कर सकती है। साफ बताओ कि मेरी चिट्ठी की चाहत नहीं हो तो बताओ और इसका जवाब न मिला तो यहीं तक बस।'

महेंद्र से और न रहा गया। मन में बोला - 'खूब नाराज हो कर ही घर लौट रहा हूँ। विनोदिनी का खयाल है, मैं उसे भूलने के लिए घर से भाग खड़ा हुआ हूँ।' उसकी इस हेकड़ी को भुलाने के लिए ही महेंद्र ने उसी दम घर लौट जाने का संकल्प किया।

इतने में बिहारी आ गया। उसे देखते ही महेंद्र के मन की उमंग दुगुनी हो गई। अब तक संदेहों के चलते बिहारी से उसे ईर्ष्या होती रही थी और दोनों में गाँठ पड़ती जा रही थी। चिट्ठी पढ़ने के बाद और ज्यादा आवेग में उसने उसकी आगवानी की।



लेकिन बिहारी का चेहरा आज उतरा हुआ था। महेन्द्र ने सोचा, 'बेचारे ने इस बीच विनोदिनी से जरूर मुलाकात की होगी और वहाँ से ठोकर खा कर आया है!' उसने पूछा - 'क्यों भाई, इस बीच मेरे घर गए थे कभी?'

बिहारी ने कहा - 'वहीं से हो कर आ रहा हूँ अभी।'

मन-ही-मन बिहारी की पीड़ा का अनुमान करके महेन्द्र को अच्छा न लगा। उसने मन में कहा - 'अभाग! किसी महिला ने कभी उसे नहीं चाहा।' फिर भी उसने बातचीत शुरू करते हुए पूछा - 'कैसे हैं सब?'

इस बात का जवाब देने के बजाय वह बोला - 'घर छोड़ कर अचानक यहाँ!'

महेन्द्र ने कहा - 'इधर लगातार नाइट-ड्यूटी पड़ रही है - वहाँ दिक्कत हो रही थी।'

बिहारी बोला - 'नाइट-ड्यूटी तो इसके पहले भी पड़ी है, मगर घर छोड़ते तो नहीं देखा कभी?'

महेन्द्र ने हँस कर कहा - 'क्यों, कोई शक हो रहा है।'

बिहारी बोला - 'मजाक न करो। तुम्हें कहीं नहीं रहना है। चलो इसी वक्त घर चलो।'

घर जाने को तो वह तैयार ही बैठा था; मगर बिहारी ने आग्रह किया तो वह मना कर गया, गोया घर जाने की उसे जरा भी इच्छा नहीं। बोला - 'पागल हुए हो, मेरे एक साल पर पानी फिर जाएगा।'

बिहारी ने कहा - 'देखो महेन्द्र भैया, मैं तुम्हें तब से देखता आया हूँ, जब तुम छोटे-से थे। मुझे फुसलाने की कोशिश न करो! तुम जुल्म कर रहे हो।'

महेन्द्र - 'जुल्म कर रहा हूँ, किस पर, जज साहब!'

बिहारी नाराज हो कर बोला - 'तुम सदा दिल की तारीफ करते आए हो, अब तुम्हारा दिल कहाँ गया?'

महेन्द्र - 'फिलहाल तो अस्पताल में है।'

बिहारी - 'चुप रहो! तुम यहाँ हँस-हँस कर मुझसे मजाक कर रहे हो और वहाँ तुम्हारी आशा तुम्हारे कमरों में रोती फिर रही है।'

आशा के रौने की बात सुन कर अचानक महेन्द्र को धक्का लगा। अपने नए नशे में उसे इसकी सुध न थी कि दुनिया में और भी किसी का सुख-दुःख है। वह चौंका! पूछा - 'आशा क्यों रो रही है?'

बिहारी ने अपनी आँखों जो कुछ देखा, आदि से अंत तक कह सुनाया। उसे याद आ गया कैसे विनोदिनी से लिपट कर आशा की आँखें बह रही थीं। उसका गला रुँध गया। महेन्द्र को खूब पता था कि आशा का मन वास्तव में किधर है!

महेन्द्र बोला - 'खैर चलो। गाड़ी बुला लो!'

22. महेन्द्र घर पहुँचा। उसका चेहरा देखते ही आशा के मन का सारा संदेह कुहरे के समान एक ही क्षण में फट गया। अपनी चिट्ठियों की बात सोच कर महेन्द्र के सामने मारे शर्म के वह सिर न उठा सकी। इस पर महेन्द्र ने शिकवा किया- 'ऐसे आरोप लगा कर तुमने चिट्ठियाँ लिखीं कैसे!'

और उसने जाने कितनी बार पढ़ी हुई वे तीनों चिट्ठियाँ अपनी जेब से निकालीं। आशा ने गिड़गिड़ाकर कहा - 'तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, इन चिट्ठियों को फाड़ फेंको!'

महेन्द्र से उन चिट्ठियों को ले लेने के लिए वह उतावली हो गई। महेन्द्र ने उसे रोक कर चिट्ठियों को जेब के हवाले किया। कहा - 'मैं काम से गया और तुमने मेरा मतलब ही नहीं समझा? मुझ पर संदेह किया?'

छलछलाती आँखों से आशा बोली - 'अबकी बार मुझे माफ कर दो! आइंदा ऐसा न होगा।'

महेन्द्र ने कहा - 'कभी नहीं?'

आशा बोली - 'कभी नहीं।'

महेन्द्र ने उसे अपने पास खींच कर चूम लिया। आशा बोली - 'लाओ, चिट्ठियाँ दे दो, फाड़ डालूँ!'

महेन्द्र बोला - 'रहने दो उन्हें।'

आशा ने विनय से यह समझा- 'मेरी सजा के रूप में इन्होंने चिट्ठियाँ रख ली हैं।'

चिट्ठियों के चलते आशा का मन विनोदिनी की तरफ से जरा ऐंठ गया। पति लौट आए, यह खबर वह विनोदिनी से कहने न गई, बल्कि उससे कतराती रही। विनोदिनी इसे ताड़ गई और काम के बहाने बिलकुल दूर ही रही।

महेंद्र ने सोचा - 'अजीब है! सोचा था, अबकी बार विनोदिनी को मजे से देख पाऊँगा- उलटा ही हुआ। फिर उन चिट्ठियों का मतलब?'

महेंद्र ने अपने मन को इसके लिए सख्त बनाया कि नारी के दिल को अब कभी समझने की कोशिश नहीं करेगा। सोच रखा था, 'विनोदिनी पास आना भी चाहेगी तो मैं दूर-दूर रहूँगा।' अभी उसके जी में आया, 'न, यह तो ठीक नहीं हो रहा है- सचमुच ही हम लोगों में कोई विकार आ गया है। खुले दिल की विनोदिनी से बातचीत, हँसी-दिल्लगी करके संदेह की इस घुटन को मिटा डालना ही ठीक है।' उसने आशा से कहा - 'लगता है, मैं ही तुम्हारी सखी की आँख की किरकिरी हो गया। उनकी तो अब झाँकी भी नहीं दिखाई पड़ती।'

उदास हो कर आशा बोली - 'जाने उसे क्या हो गया है!'

इधर राजलक्ष्मी आ कर रोनी-सी हो कर बोलीं- 'बेटी, अब तो विपिन की बहू को रोकना मुश्किल हो रहा है।'

महेंद्र चौंकते मगर अपने पर नियंत्रण करते हुए उसने पूछा - 'क्यों माँ?'

'बेटा, वह तो अबकी बार अपने घर जाने के लिए अड़ गई है। तुझे तो किसी की खातिरदारी आती नहीं। एक पराई लड़की अपने घर आई है, उसका अगर घर के लोगों-जैसा आदर-मान न हो तो रहे कैसे?'

विनोदिनी सोने के कमरे में चादर सी रही थी। महेंद्र गया। आवाज दी - 'किरकिरी!'

विनोदिनी सम्हलकर बैठी। पूछा - 'जी! महेंद्र बाबू!'

महेंद्र बाबू ने कहा - 'अजीब मुसीबत है! ये हजरत महेंद्र बाबू कब से हो गए!'

अपनी सिलाई में आँखें गड़ाए हुए ही विनोदिनी बोली - 'फिर क्या कह कर पुकारूँ आपको?'

महेंद्र ने कहा - 'जिस नाम से अपनी सखी को पुकारती हो- 'आँख की किरकिरी!'

और दिन की तरह विनोदिनी ने मजाक करके कोई जवाब न दिया। वह अपनी सिलाई में लगी रही।

महेंद्र ने कहा - 'लगता है, वही सच्चा रिश्ता है, तभी तो दुबारा जुड़ पा रहा है।'

विनोदिनी जरा रुकी। सिलाई के किनारे से बढ़ रहे धागे के छोर को दाँतों से काटती हुई बोली - 'मुझे क्या पता, आप जानें!'

और दूसरे जवाबों को टाल कर गंभीरता से पूछ बैठी- 'कॉलेज से एकाएक कैसे लौट आए।'

महेंद्र बोला - 'केवल लाश की चीर-फाड़ से कब तक चलेगा?'

विनोदिनी ने फिर दाँत से सूत काटा और उसी तरह सिर झुकाए हुए बोली - 'तो अब जीवन की जरूरत है?'

महेंद्र ने सोचा था, आज विनोदिनी से बड़े सहज ढंग से हँसी-मजाक करूँगा लेकिन बोझ इतना हो गया कि लाख कोशिश करके भी हल्का जवाब जुबान पर न आ सका। विनोदिनी आज कैसी दूरी रख कर चल रही है, यह देख कर महेंद्र उद्वेलित हो गया। इच्छा होने लगी, एक झटके से इस रुकावट को मटियामेट कर दे। उसने विनोदिनी की काटी हुई वाक्य-चिकोटी का कोई जवाब न दिया - अचानक उसके पास जा बैठा। बोला - 'तुम हम लोगों को छोड़ कर जा क्यों रही हो? कोई अपराध हो गया है मुझसे!' विनोदिनी इस पर जरा खिसक गई। सिलाई से सिर उठा कर उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें महेंद्र की ओर लगा कर कहा - 'काम-धन्धा तो हर किसी को है। आप सब छोड़ कर कहीं और रहने चले दिए। वह क्या किसी अपराध से कम है।'

महेंद्र को कोई अच्छा जवाब ढूँढ़े न मिला। जरा देर चुप रह कर पूछा - 'ऐसा क्या काम पड़ा है कि गए बिना होगा ही नहीं?'

बड़ी सावधानी से सुई में धागा डालती हुई वह बोली - 'काम है या नहीं, यह मैं ही जानती हूँ। आपको उसकी फेहरिस्त क्या दूँ!'

महेंद्र खिड़की से बाहर चिंतित-सा बड़ी देर तक एक नारियल की फुनगी पर नजर टिकाए चुप बैठा रहा। विनोदिनी चुपचाप सिलाई करती रही। यह हाल कि फर्श पर सुई गिरे, तो आवाज सुनाई दे! बड़ी देर बाद महेंद्र अचानक बोल उठा। हठात जो निस्तब्धता भंग हुई, विनोदिनी चौंक पड़ी। उसकी उँगली में सुई चुभ गई।

महेंद्र ने पूछा - 'किसी भी तरह से न रुक सकोगी?'

सुई चुभी उँगुली का खून चूसती हुई विनोदिनी ने कहा - 'विनती किस बात की? मैं रही न रही, आपको क्या फर्क पड़ता है।'

कहते-कहते उसका गला भर आया। फिर झुक कर वह सिलाई में लग गई। लगा, उसकी पलकों की कोर में आँखों की हल्की-सी रेखा झलक पड़ी है। माघ का अपराहन उधर शाम के अँधेरे में खोने लगा था।

लमहे-भर में महेंद्र ने विनोदिनी का हाथ दबा कर रुंधे और सजल स्वर में कहा, 'अगर इससे मेरा कुछ बिगड़ता हो तो रुकोगी?'

विनोदिनी ने झट से हाथ छुड़ा लिया। थोड़ा सरक कर बैठ गई। महेंद्र चौंका। अपनी अंतिम बात अपने ही कानों में व्यंग्य-जैसी गूँजती रही। दोषी जीभ को उसने दाँत से काटा फिर कुछ कहते न बना।

घर में सन्नाटा छाया था, तभी आशा आ गई। विनोदिनी झट कह उठी, 'खैर, तुम लोगों ने जब मेरी अकड़ इतनी बढ़ा रखी है, तो मेरा भी फर्ज है कि तुम लोगों की एक बात मान लूँ। जब तक विदा नहीं करोगे, मैं यहीं रहूँगी।'

पति की कामयाबी से फूली न समाती हुई आशा सखी से लिपट गई। बोली - 'तो फिर यही पक्का रहा! तीन बार कबूल करो कि जब तक हम विदा नहीं करते, तब तक रहोगी, रहोगी, रहोगी।'

विनोदिनी ने तीन बार कबूल किया। आशा ने कहा - 'भई किरकिरी, रहना तो पड़ा, फिर नाकों चने क्यों चबवाए? अंत में मेरे पति से हार माननी ही पड़ी।'

विनोदिनी हँस कर बोली - 'भाई साहब, हार मैंने मानी कि तुमने मानी?'

महेंद्र को जैसे काठ मार गया हो। लग रहा था, जैसे उसका अपराध तमाम कमरों में बिखरा पड़ा है। उसने गंभीर हो कर कहा - 'हार तो मेरी ही हुई है।'

और वह कमरे से बाहर चला गया।

और दूसरे ही क्षण फिर अंदर आया। आ कर विनोदिनी से कहा - 'मुझे माफ कर दो!'

विनोदिनी बोली - 'क्या कुसूर किया है तुमने, लालाजी?'

महेंद्र बोला - 'तुम्हें यों जबरदस्ती यहाँ रोक रखने का हमें कोई अधिकार नहीं।'

विनोदिनी हँस कर बोली - 'जबरदस्ती कहाँ की है? प्यार से सीधी तरह ही तो रहने को कहा - यह जबरदस्ती थोड़े है।'

आशा सोलहों आने सहमत हो कर बोली - 'हर्गिज नहीं।'

विनोदिनी ने कहा - 'भाई साहब, तुम्हारी इच्छा है, मैं रहूँ। मेरे जाने से तुम्हें तकलीफ होगी- यह तो मेरी खुशकिस्मती है। क्यों भई किरकिरी, ऐसे सहृदय दुनिया में मिलते कितने हैं? और दुःख में दुखी, सुख में सुखी भाग्य से कोई मिला, तो मैं ही उसे छोड़ कर जाने को क्यों उतावली होऊँ?'

पति को चुप रहते देख आशा जरा खिन्न मन से बोली - 'बातों में तुमसे कौन जीते? मेरे स्वामी तो हार मान गए, अब जरा रुक भी जाओ।'

महेंद्र फिर तेजी से बाहर हो गया। उधर बिहारी कुछ देर राजलक्ष्मी से बातचीत करके महेंद्र की ओर आ रहा था। दरवाजे पर ज्यों ही बिहारी पर नजर पड़ी, महेंद्र बोल उठा- 'भाई बिहारी, मुझ-सा नालायक दुनिया में दूसरा नहीं।'

उसने कुछ ऐसे कहा कि वह बात कमरे में पहुँच गई।

अंदर से उसी दम पुकार हुई - 'बिहारी बाबू?'

बिहारी ने कहा - 'अभी आया, विनोद भाभी!'

कमरे में जाते ही बिहारी ने तुरंत आशा की तरफ देखा - घूँघट में से जितना-भर दिखाई पड़ा, उसमें विषाद या वेदना की कोई निशानी ही न थी। आशा उठ कर जाने लगी। विनोदिनी उसे पकड़े रही। कहा - 'यह तो बताएँ भाई साहब, मेरी आँखों की किरकिरी से आपका सौत का नाता है क्या? आपको देखते ही वह भाग क्यों जाना चाहती है?'

आशा ने शर्मा कर विनोदिनी को झिड़का।

बिहारी ने हँस कर कहा - 'इसलिए कि विधाता ने मुझे वैसा खूबसूरत नहीं बनाया है।'

विनोदिनी - 'देख लिया भई किरकिरी, बिहारी बाबू किस कदर बचा कर बात करना जानते हैं! इन्होंने तुम्हारी पसंद को दोष नहीं दिया, दिया विधाता को। लक्ष्मण-जैसे सुलक्षण देवर को पा कर तुझे आदर करना न आया, तेरी ही तकदीर खोटी है।'

बिहारी - 'इस पर तुम्हें अगर तरस आए विनोद भाभी, तो फिर मुझे शिकवा ही क्या रहे!'

विनोदिनी - 'समुद्र तो है ही, फिर भी बादलों के बरसे बिना चातक की प्यास क्यों नहीं मिटती?'

आशा को आखिर रोक कर न रखा जा सका। वह जबरदस्ती हाथ छोड़ा कर चली गई। बिहारी भी जाना चाह रहा था। विनोदिनी ने कहा - 'महेंद्र बाबू को क्या हुआ है, कह सकते हैं आप?'

बिहारी ठिठक पड़ा। बोला - 'मुझे तो कुछ पता नहीं, कुछ हुआ है क्या?'

विनोदिनी - 'पता नहीं, मुझे तो ठीक नहीं दीखता।'

उत्सुक हो कर बिहारी कुर्सी पर बैठ गया। पूरी तरह सुन लेने के खयाल से वह उन्मुख हो कर विनोदिनी की ओर ताकता रहा। विनोदिनी कुछ न बोली। मन लगा कर चादर सीने लगी।

कुछ देर रुक कर वह बोला, 'तुमने महेंद्र में खास कुछ गौर किया क्या?'

विनोदिनी बड़े सहज भाव से बोली - 'क्या जानें, मुझे तो ठीक नहीं दीखता। मुझे तो अपनी किरकिरी के लिए फिक्र होती है।' - और एक लंबी उसाँस ले कर वह सिलाई छोड़ कर जाने लगी।

बिहारी ने व्यस्त हो कर कहा - 'जरा बैठो, भाभी!'

विनोदिनी ने कमरे के सारे खिड़की-किवाड़ खोल दिए। लालटेन की बत्ती बढ़ा दी और सिलाई का सामान लिए बिस्तर के उस छोर पर जा बैठी। बोली - 'मैं तो यहाँ सदा रहूँगी नहीं- मेरे चले जाने पर मेरी किरकिरी का खयाल रखना- वह बेचारी दुखी न हो।'

कह कर मन के उद्वेग को जब्त करने के लिए उसने मुँह फेर लिया।

बिहारी बोल पड़ा- 'भाभी, तुम्हें रहना ही पड़ेगा। तुम्हारा अपना कहने को कोई नहीं- इस भोली लड़की को सुख-दुःख में बचाने का भार तुम लो- कहीं तुम छोड़ गई, तो फिर कोई चारा नहीं।'

विनोदिनी - 'भाई साहब, दुनिया का हाल तुमसे छिपा नहीं, मैं यहाँ सदा कैसे रह सकता हूँ? लोग क्या कहेंगे?'

बिहारी - 'लोग जो चाहें कहें, तुम ध्यान ही मत दो! तुम देवी हो, एक असहाय लड़की को दुनिया की ठोकरों से बचाना तुम्हारे ही योग्य काम है।'

विनोदिनी का रोआँ-रोआँ पुलकित हो उठा। बिहारी के इस भक्ति-उपहार को वह मन से भी गलत मान कर ठुकरा न सकी, हालाँकि वह छलना कर रही थी। ऐसा व्यवहार उसे कभी किसी से न मिला था। विनोदिनी के आँसू देख कर बिहारी मुश्किल से अपने आँसू जब्त करके महेंद्र के कमरे में चला गया। बिहारी को यह बात बिलकुल समझ में न आई कि महेंद्र ने अचानक अपने आपको नालायक क्यों कह दिया। कमरे में जा कर देखा, महेंद्र नहीं था। पता चला, वह टहलने निकल गया है। पहले बे-वजह वह घर से कभी बाहर नहीं जाया करता था। जाने-पहचाने लोगों के घर से बाहर उसे बड़ी परेशानी होती। बिहारी सोचता हुआ धीरे-धीरे अपने घर चला गया।

विनोदिनी आशा को अपने कमरे में ले आई। उसे छाती से लगा कर छलछलाई आँखों से कहा - 'भई किरकिरी, मैं बड़ी अभागिन हूँ, बड़ी बदशकुन।'

आशा दुखी मन से बोली - 'ऐसा क्यों कहती हो, बहन?'

सुबकते बच्चे की तरह वह आशा की छाती में मुँह गाड़ कर बोली - 'मैं जहाँ भी रहूँगी, बुरा ही होगा। मुझे छोड़ दे बहन, छुट्टी दे! मैं अपने जंगल में चली जाऊँ।'

महेंद्र से बिहारी की मुलाकात न हो सकी, इसलिए कोई बहाना बना कर फिर वह वहाँ आया ताकि आशा और महेंद्र के बीच की आशंका वाली बात को और कुछ साफ तौर से जान सके।

वह विनोदिनी से यह अनुरोध करने का बहाना लिए आया कि कल महेंद्र को अपने यहाँ भोजन के लिए आने को कहे। उसने आवाज दी - 'विनोद भाभी!' और बाहर से ही बत्ती की मद्धम रोशनी में गीली आँखों वाली दोनों सखियों को आलिंगन में देख कर वह ठिठक गया। अचानक आशा के मन में हुआ कि हो न हो, आज बिहारी ने जरूर



विनोदिनी से कुछ निंदा की बात कही है, तभी वह जाने की बात कर रही है। यह तो बिहारी बाबू की बड़ी ज्यादाती है। ऊँहूँ, अच्छे मिजाज के नहीं हैं। कुढ़ कर आशा बाहर निकल आई और बिहारी भी विनोदिनी के प्रति मन की भक्ति की ओर बढ़ कर बैरंग वापस हो गया।

रात को महेंद्र ने आशा से कहा - 'चुन्नी, मैं सुबह की गाड़ी से बनारस चला जाऊँगा।'

आशा का कलेजा धक से रह गया। पूछा, 'क्यों?'

महेंद्र बोला - 'काफी दिन हो गए, चाची से भेंट नहीं हुई।' महेंद्र की यह बात सुन कर आशा शर्मिंदा हो गई। उसे यह इससे भी पहले सोचना चाहिए था। अपने सुख-दुःख के आकर्षण में वह अपनी स्नेहमयी मौसी को भूल गई।

महेंद्र ने कहा - 'अपने स्नेह की एकमात्र थाती को वह मेरे ही हाथों सौंप गई हैं - उन्हें एक बार देखे बिना मुझे चैन नहीं मिलता।'

कहते-कहते महेंद्र का गला भर आया। स्नेह-भरे मौन आशीर्वाद और अव्यक्त मंगल-कामना से वह बार-बार अपना दायाँ हाथ आशा के माथे पर फेरने लगा। अचानक ऐसे उमड़ आए स्नेह का मर्म आशा न समझ सकी। उसका हृदय केवल पिघल कर आँखों से बहने लगा। आज ही शाम को स्नेहवश विनोदिनी ने उसे जो कुछ कहा था, याद आया। इन दोनों में कहीं योग भी है या नहीं, वह समझ न सकी। लेकिन उसे लगा, 'यह मानो उसके जीवन की कोई सूचना है। अच्छी बुरी, कौन जाने!'

भय से व्याकुल हो कर उसने महेंद्र को बाँहों में जकड़ लिया। महेंद्र उसके नाहक संदेह के आवेश को समझ गया। बोला - 'चुन्नी, तुम पर तुम्हारी पुण्यवती मौसी का आशीर्वाद है। तुम्हें कोई खतरा नहीं। तुम्हारी ही भलाई के लिए वह अपना सर्वस्व छोड़ कर चली गई - तुम्हारा कभी कोई बुरा नहीं हो सकता।'

इस पर आशा ने निडर हो कर अपने मन के भय को निकाल फेंका। पति के इस आशीर्वाद को उसने अक्षय कवच के समान ग्रहण किया। मन-ही-मन उसने मौसी के चरणों की धूल को बार-बार अपने माथे से लगाया और एकाग्र हो कर बोली - 'तुम्हारा आशीर्वाद सदा मेरे स्वामी की रक्षा करे।'

दूसरे दिन महेंद्र चला गया। विनोदिनी ने जाते समय कुछ न बोला। विनोदिनी मन में कहने लगी - 'गलती खुद की और गुस्सा मूझ पर! ऐसा साधु पुरुष तो मैंने नहीं देखा। लेकिन ऐसी साधुता ज्यादा दिन नहीं टिकती!'

23. बहुत दिनों के बाद अचानक महेंद्र को आते देख कर एक ओर तो अन्नपूर्णा गदगद हो गई और दूसरी ओर उन्हें यह शंका हुई कि शायद आशा की माँ से फिर कुछ चख-चख हो गई है - महेंद्र उसी की शिकायत पर दिलासा देने आया है। छुटपन से ही महेंद्र मुसीबत पड़ने पर अपनी चाची की शरण में जाता रहा है। कभी किसी पर उसे गुस्सा आया, तो चाची ने उसे शांत कर दिया और कभी उसे कोई तकलीफ हुई तो चाची ने धीरज से सहने की नसीहत दी। लेकिन विवाह के बाद से जो सबसे बड़ा संकट महेंद्र पर आ पड़ा, उसके प्रतिकार की कोशिश तो दूर रही - सांत्वना देने तक में वह असमर्थ रहीं। इसके बारे में जब वह यह समझ गई कि चाहे जैसे भी वह हाथ डालें, घर की अशांति दुगुनी हो जाएगी, तो उन्होंने घर ही छोड़ दिया। बीमार बच्चा जब पानी के लिए चीखता-रोता है और पानी देने की मनाही होती है, तो दुखिया माँ जैसे दूसरे कमरे में चली जाती है, अन्नपूर्णा ठीक वैसे ही काशी चली गई थीं। सुदूर तीर्थ में रह कर धर्म-कर्म में ध्यान-मन लगा कर दीन-दुखिया को कुछ भुलाया था - महेंद्र क्या फिर उन्हीं झगड़े-झंझटों की चर्चा से उनके छिपे घाव पर चोट करने आया है?

लेकिन महेंद्र ने आशा के संबंध में अपनी माँ से कोई शिकायत नहीं की। फिर तो उनकी शंका दूसरी ओर बढ़ी। जिस महेंद्र के लिए आशा को छोड़ कर कॉलेज तक जाना गवारा न था, वह चाची की खोज-खबर लेने के लिए काशी कैसे आ पहुँचा? तो क्या आशा के प्रति उसका आकर्षण ढीला पड़ रहा है?

उन्होंने पूछा - 'मेरे सिर की कसम महेंद्र, ठीक-ठीक बताना, चुन्नी कैसी है?'

महेंद्र बोला - 'वह तो खासे मजे में है, चाची!'

'आजकल वह करती क्या है, बेटे! तुम लोग अभी तक वैसे ही बच्चों-जैसे हो या घर-गिरस्ती का भी ध्यान रखते हो अब?'

महेंद्र ने कहा - 'बचपना तो बिलकुल बंद है, चाची! सारे झंझटों की जड़ तो किताब थी - चारुपाठ - वह जाने कहाँ गायब हो गई, अब ढूँढ़े भी नहीं मिलती, कहीं।'

- 'अरे, बिहारी क्या कर रहा है?'

महेंद्र ने कहा - 'अपना जो काम है, उसे छोड़ कर वह सब कुछ कर रहा है। पटवारी-गुमाश्ते उसकी जायदाद की देख-भाल करते हैं। वे क्या देख-भाल करते हैं, खुदा जानें। बिहारी का हमेशा यही हाल रहा। उसका अपना काम दूसरे लोग देखते हैं, दूसरों का काम वह खुद देखता है।'

अन्नपूर्णा ने पूछा - 'विवाह नहीं करेगा क्या?'

महेंद्र जरा हँस कर बोला - 'कहाँ, ऐसा कुछ तो दिखाई नहीं पड़ता।'

अन्नपूर्णा को अंतर के गोपन स्थान में एक चोट-सी लगी।

महेंद्र ने कभी मजाक से, कभी गंभीर हो कर अपनी गिरस्ती का मौजूदा हाल उन्हें सुनाया, केवल विनोदिनी का कोई जिक्र उसने नहीं किया।

कॉलेज अभी खुला था। महेंद्र के ज्यादा दिन काशी में रहने की गुंजाइश न थी। लेकिन सख्त बीमारी के बाद अच्छी आबोहवा में सेहत सुधारने की जो तृप्ति होती है, काशी में अन्नपूर्णा के पास महेंद्र को हर रोज उसी तृप्ति का अनुभव हो रहा था - लिहाजा दिन बीतने लगे। अपने आप ही से विरोध की जो स्थिति हो गई थी, वह मिट गई। इन कई दिनों तक धर्मप्राण अन्नपूर्णा के साथ रह कर दुनियादारी के फर्ज ऐसे सहज और सुख देने वाले लगे कि महेंद्र को उनके हौआ लगने की पिछली बात हँसी उड़ाने-जैसी लगी। उसे लगा - विनोदिनी कुछ नहीं। यहाँ तक कि उसकी शकल भी वह साफ-साफ याद नहीं कर पाता। आखिरकार बड़ी दृढ़ता से महेंद्र मन-ही-मन बोला - 'आशा को मेरे हृदय से बाल-भर भी खिसका सके, ऐसा तो मैं किसी को, कहीं भी नहीं देख पाता।'

उसने अन्नपूर्णा से कहा - 'चाची, मेरे कॉलेज का हर्ज हो रहा है, अब इस बार तो मैं चलूँ! तुम संसार की माया छोड़ कर यहाँ आ बसी हो अकेले में, फिर भी अनुमति दो कि बीच-बीच में तुम्हारे चरणों की धूल ले जाया करूँ!'

काशी से लौट कर महेंद्र ने आशा को जब मौसी के भेजे गए स्नेहोपहार - एक सिंदूर की डिबिया और सफेद पत्थर का एक लोटा - दिए, तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। मौसी का वह स्नेहमय धीरज और उन पर अपनी तथा सास की फजीहतों की बात याद आते ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने महेंद्र से कहा - 'बड़ी इच्छा हो रही है कि एक बार मैं भी काशी जाऊँ और मौसी की क्षमा तथा चरणों की धूल ले आऊँ। क्या यह मुमकिन नहीं?'

महेंद्र ने आशा के मन की पीड़ा को समझा और इस बात पर राजी भी हुआ कि वह कुछ दिनों के लिए अपनी मौसी के पास जाए। लेकिन फिर अपनी पढ़ाई का हर्ज करके खुद उसे काशी ले जाने में उसे हिचक होने लगी।

आशा ने कहा - 'मेरी बड़ी चाची जी तो जल्दी ही काशी जाने वाली हैं। उनके साथ चली जाऊँ तो क्या हर्ज है?'

महेंद्र ने जा कर राजलक्ष्मी से कहा - 'माँ, बहू एक बार चाची से मिलने के लिए काशी जाना चाहती है।'

राजलक्ष्मी ने व्यंग्य से कहा - 'बहू जाना चाहती है, तो जरूर जाए। जाओ, उन्हें ले जाओ!'

बिहारी राजलक्ष्मी से मिलने आया, तो वह बोली - 'अरे, बिहारी, सुना तूने? अपनी बहू काशी जा रही है?'

बिहारी बोला - 'कह क्या रही हो माँ, महेंद्र भैया फिर पढ़ाई हर्ज करके जाएँगे?'

राजलक्ष्मी बोली - 'न-न, महेंद्र क्यों जाएँगे? महेंद्र यहीं रहेंगे। बहू अपने बड़े चाचा के साथ जाएगी।'

बिहारी भीतर-ही-भीतर परेशान हुआ। वह सोचने लगा, 'आखिर माजरा क्या है। महेंद्र काशी गया तो आशा यहाँ रही और वह लौटा, तो अब आशा काशी जा रही है। दोनों में कुछ ऐसा हुआ है। आखिर ऐसा कितने दिन चलेगा? दोस्त हो कर भी हम इसका कोई प्रतिकार नहीं कर सकते - दूर से खड़े-खड़े तमाशा देखते रहेंगे?'

माता के व्यवहार से बड़ा ही कुढ़ कर महेंद्र अपने कमरे में आ कर बैठा था। विनोदिनी ने इस बीच महेंद्र से भेंट नहीं की थी, सो आशा उसे बगल के कमरे से यहाँ ले आने के लिए अनुरोध कर रही थी।

ऐसे में बिहारी आया। उसने महेंद्र से पूछा - 'आशा भाभी का काशी जाना तय हुआ है?'

महेंद्र बोला - 'क्यों न हो, कोई अड़चन है?'

बिहारी बोला - 'अड़चन की बात कौन कह रहा है! मगर अचानक तुम्हारे दिमाग में यह आया कैसे?'

महेंद्र ने कहा - 'अपनी मौसी को देखने की इच्छा, परदेस में रहने वाले आत्मीय के लिए व्याकुलता मानव चरित्र में होती है।'

बिहारी ने पूछा - 'साथ तुम जा रहे हो?'

पूछते ही महेंद्र के दिमाग में आया, 'बड़े चाचा के साथ भेजना ठीक नहीं - बिहारी इसी पर बात करने आया है।' - ज्यादा बोल-चाल से कहीं गुस्सा न फट पड़े, इसीलिए उसने संक्षेप में कहा - 'नहीं।'

बिहारी महेंद्र को पहचानता था। वह नाराज है, यह बिहारी से छिपा न था। वह यह भी जानता था कि उसने जिद पकड़ ली, तो उसे टस से मस नहीं किया जा सकता। इसलिए उसने फिर उसके जाने का जिक्र ही न किया। सोचा - 'बेचारी आशा अगर जी में कोई पीर ही छिपाए जाती हो, तो विनोदिनी के साथ जाने से उसे थोड़ी-सी राहत मिलेगी।' उसने धीरे से कहा - 'उनके साथ विनोद भाभी जाएँ, तो अच्छा न रहेगा?'

महेंद्र चीख उठा- 'बिहारी, अपने मन की बात खोल कर ही कहो! मेरे साथ टेढ़े-टेढ़े चलने की क्या जरूरत है? मैं समझ रहा हूँ, तुम्हें शुबहा है कि मैं विनोदिनी को प्यार करता हूँ। गलत है। प्यार मैं नहीं करता। मुझे बचाने के लिए पहरा देते फिरने की जरूरत नहीं। अपने को समहालो!

जहाँ पर काफी दर्द हो, वहाँ अगर कोई बेरहमी के साथ पाँवों से मसल डाले तो चोट खाया हुआ आदमी चोट करने वाले पर जिस तरह बिना कुछ विचारे टूट पड़ना चाहता है, उसी तरह रुद्ध गले से बदरंग पड़ा चेहरा लिए बिहारी कुर्सी से उठ कर महेंद्र की ओर लपका और, सहसा रुक कर किसी तरह बोल पाया- 'ईश्वर तुम्हें क्षमा करें, मैं चला।'

लड़खड़ाता हुआ वह कमरे से बाहर निकल गया। बगल के कमरे से विनोदिनी झपट कर आई- 'बिहारी बाबू!'

दीवार का सहारा लिए हँसने की कोशिश करते हुए बिहारी ने कहा - 'क्या है, विनोद भाभी!'

विनोदिनी बोली - 'किरकिरी के साथ मैं भी काशी जाऊँगी।'

बिहारी ने कहा - 'नहीं-नहीं भाभी, यह न होगा। मैं आरजू करता हूँ, मेरे कहने से कुछ मत करना। मैं यहाँ का कोई नहीं होता, यहाँ की किसी भी बात में मैं दखल नहीं देना चाहता। तुम देवी हो, जो तुम्हें ठीक जँचे, वही करना! मैं चला।'

विनोदिनी को नम्रता से नमस्कार करके बिहारी जाने लगा।

विनोदिनी बोली - 'मैं देवी नहीं हूँ भाई साहब, सुनो तो सही। तुम चल दोगे, तो किसी का भला न होगा। फिर मुझे दोष मत देना!'

बिहारी चला गया। महेंद्र ठगा-सा बैठा रहा।

विनोदिनी बिजली-सी कटाक्ष करती हुई बगल के कमरे में चली गई जहाँ आशा मारे शर्म के मरी-सी जा रही थी। बिहारी उसे प्यार करता है - महेंद्र के मुँह से ऐसा सुन कर वह मुँह नहीं उठा पा रही थी। लेकिन उस समय उस पर विनोदिनी को दया न आई। आशा ने अगर निगाह उठा कर देखा होता, तो वह डर जाती। सारे संसार पर मानो खून चढ़ आया था। विनोदिनी का झूठ! बेशक विनोदिनी को कोई भी नहीं प्यार करता।

आवेश में वही जो एक बार महेंद्र के मुँह से निकल पड़ा था कि मैं नालायक हूँ, उसके बाद जब वह आवेश जाता रहा तो अपने उस अचानक उबल पड़ने की वजह से बिहारी से वह सकुचा गया था। उसे लग रहा था कि उसकी सारी बातें खुल गई हैं। वह विनोदिनी को प्यार नहीं करता, फिर भी बिहारी का खयाल है, प्यार करता है। जो कुढ़न बढ़ रही थी, आज वह अचानक भभक पड़ी।

लेकिन बगल के कमरे से विनोदिनी दौड़ती आई, और उसने बिहारी को रोकने की कोशिश की और बिहारी के कहे मुताबिक वह काशी जाने को तैयार हो गई - यह सब महेंद्र की कल्पना के भी बाहर था। इस दृश्य ने महेंद्र को एक चोट पहुँचा कर अभिभूत कर दिया। उसने कहा था कि वह विनोदिनी को प्यार नहीं करता; लेकिन जो कुछ सुना, जो कुछ देखा, उसने उसे चैन न लेने दिया। चारों तरफ से उसे बेचैन बनाने लगा। और बार-बार निरे अफसोस के साथ उसके जी में होने लगा कि विनोदिनी ने मुझे यह कहते सुना कि मैं उसे प्यार नहीं करता।

24. महेंद्र ने सोचा, गलत, मैं विनोदिनी को प्यार नहीं करता। शायद प्यार न भी करता हूँ, मगर कहना कि नहीं करता हूँ यह तो और भी कठिन है। इससे चोट न पहुँचे, ऐसी स्त्री कौन है? इसके प्रतिवाद की गुंजाइश कैसे हो?

महेंद्र ने बक्स से निकाल कर उसकी तीनों चिट्ठियों को फिर से पढ़ा। वह मन-ही-मन बोला - 'इसमें कोई संदेह नहीं कि विनोदिनी मुझे प्यार करती है। मगर कल वह बिहारी के सामने इस तरह क्यों आई? शायद मुझे दिखाने के ही लिए। मैंने जब साफ जता दिया कि मैं उसे प्यार नहीं करता, तो फिर किसी मौके से मेरे सामने प्यार को ठुकराए नहीं तो और क्या करे? हो सकता है, मुझसे इस तरह ठुकराई जाने पर वह बिहारी को प्यार भी करने लगे।'

महेंद्र का क्षोभ इस तरह बढ़ चला कि अपनी उतावली से वह आप ही अचरज में पड़ गया। डर उठा। और, विनोदिनी ने सुन ही लिया तो क्या कि महेंद्र उसे प्यार नहीं करता? इसमें दोष भी क्या?

आँधी आने पर नाव की जंजीर जैसे लंगर को कस कर पकड़ती है, वैसे ही अकुलाहट में महेंद्र ने आशा को और भी कस कर पकड़ा।

रात को महेंद्र ने आशा का मुँह अपनी छाती से लगा कर पूछा - 'चुन्नी, ठीक बताओ, तुम मुझे कितना प्यार करती हो?'

आशा सोचने लगी - 'यह सवाल कैसा! बिहारी के बारे में जो शर्मनाक बात निकली है, क्या उसी से उस पर संदेह की ऐसी छाया पड़ी?'

वह शर्म से मुई-सी हो कर बोली - 'छिः, आज यह क्या पूछ रहे हो तुम! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, साफ बताओ, मेरे प्यार में तुम्हें कब क्या कमी दिखाई दी?'

उसे सता कर उसका माधुर्य निचोड़ने की नीयत से महेंद्र बोला - 'फिर तुम काशी क्यों जाना चाहती हो?'

आशा बोली - 'मैं नहीं जाना चाहती। कहीं भी नहीं जाऊँगी मैं।'

महेंद्र - 'लेकिन चाहा तो था पहले?'

आशा बहुत दुखी हो कर बोली - 'तुम्हें पता है, मैंने क्यों चाहा था? मजे से रहने के लिए नहीं जाना चाहती थी मैं।'

महेंद्र ने कहा - 'सच कहूँ चुन्नी, और किसी से विवाह किया होता तो तुम इससे कहीं ज्यादा सुखी होती।'



सुनते ही चौंक कर आशा महेंद्र से छिटक पड़ी और तकिए में मुँह गाड़ कर काठ की मारी-सी पड़ी रही। कुछ ही क्षण में उसकी रुलाई रोके न रुकी। सांत्वना देने के लिए महेंद्र ने उसे कलेजे से लगाने की कोशिश की, पर आशा तकिए से चिपकी रही। पतिव्रता के ऐसे रूठने से महेंद्र सुख, गर्व और धिक्कार से क्षुब्ध होने लगा।

विनोदिनी सोचने लगी, 'आखिर ऐसी तोहमत लगाए जाने पर बिहारी ने प्रतिवाद क्यों नहीं किया? उसने झूठा प्रतिवाद भी किया होता, तो मानो विनोदिनी को खुशी होती। ठीक ही हुआ कि महेंद्र ने बिहारी पर ऐसी चोट की। यह उसका पावना ही था। आखिर बिहारी-जैसा आदमी आशा को प्यार क्यों करेगा? इस चोट ने बिहारी को दूर जो हटा दिया, मानो वह अच्छा ही हुआ।' -विनोदिनी निश्चिंत हो गई।

लेकिन मृत्यु-बाण से बिंधे बिहारी का रक्तहीन पीला मुखड़ा विनोदिनी के हर काम में उसके पीछे-पीछे घूमता-सा रहा। विनोदिनी के अंदर जो एक सेवापरायण नारी प्रकृति थी, वह उस कातर चेहरे को देख कर रोने लगी।

दो-तीन दिन तक वह सभी कामों में अनमनी रही। आखिर उससे न रहा गया। उसने एक सांत्वना पत्र लिखा -

'भाई साहब, तुम्हारा जो सूखा चेहरा देखा, है, तब से मैं हृदय से यही कामना करती हूँ कि तुम भले-चंगे हो जाओ, जैसे तुम थे, वैसे ही हो जाओ - तुम्हारी वह सहज हँसी फिर कब देखूँगी - वह उदार बातें फिर कब सुनूँगी; एक पंक्ति में अपनी कुशल मुझे लिख भेजो! - तुम्हारी विनोदिनी भाभी।'

दरबान की मार्फत चिट्ठी उसने बिहारी को भेज दी।

बिहारी आशा को प्यार करता है, इस बात को महेंद्र इस रुखाई और इस बेहयाई से जुबान पर ला सकता है - बिहारी ने यह कभी स्वप्न में भी न सोचा था। क्योंकि उसने खुद भी कभी ऐसी बात को दिल में जगह न दी थी।

लेकिन बात जब एक बार मुँह से निकल पड़ी, तो एकबारगी मार तो नहीं डाला जा सकता। उसमें सच्चाई का बीज जितना था, देखते-ही-देखते वह अँकुराने लगा।

अब उसने खुद को कसूरवार समझा। मन-ही-मन बोला - 'मेरा गुस्सा करना तो शोभा नहीं देता, महेंद्र से माफी माँग कर विदा लेनी होगी। उस रोज मैं कुछ इस तरह चला



आया था, मानो महेंद्र दोषी है, मैं विचारक हूँ... अपनी यह गलती मुझे कबूल करनी पड़ेगी।'

बिहारी समझ रहा था, आशा चली गई है। एक दिन शाम को वह धीरे-धीरे जा कर महेंद्र के दरवाजे पर जा कर खड़ा हुआ। राजलक्ष्मी के दूर के रिश्ते के मामा साधुचरण पर नजर पड़ी। कहा - 'कई दिनों से इधर आ नहीं सका - सब कुशल तो है?'

साधुचरण ने कुशल कही। बिहारी ने पूछा - 'भाभी काशी कब गई?'

साधुचरण ने कहा - 'कहाँ, गई कहाँ? उनका जाना अब न होगा।'

यह सुन कर बिहारी सब कुछ भूल कर अंदर जाने को बेचैन हो उठा। पहले वह जैसे ग्रहण भाव से खुशी-खुशी अपनों-सा परिचित सीढ़ियों से अंदर जाया करता था, सबसे हँसता-बोलता था, जी में कुछ होता न था, आज उसकी मनाही थी, दुर्लभ था वह - इसकी याद आते ही उसका मन पागल हो गया। बस एक बार, केवल अंतिम बार इसी तरह अंदर जा कर परिवार के सदस्य-सा राजलक्ष्मी से, घूँघट निकाले आशा भाभी से दो बातें मात्र कर आना उसके लिए परम आकांक्षा का विषय बन बैठा।

साधुचरण ने कहा - 'अरे, अँधेरे में खड़े क्यों रह गए, अंदर आओ!'

बिहारी तेजी से दो-चार डग की तरफ बढ़ा और मुड़ कर बोला - 'नहीं, चलूँ मैं, काम है।' और जल्दी से लौट गया।

उसी रात बिहारी पश्चिम की ओर कहीं चला गया।

बिहारी घर पर नहीं मिला - दरबान विनोदिनी की चिट्ठी ले कर लौट आया। महेंद्र डयोढ़ी के सामने वाले बगीचे में टहल रहा था। उसने पूछा - 'किसकी चिट्ठी है?'

दरबान ने बताया। महेंद्र ने उससे चिट्ठी ले ली। एक बार तो जी में आया, चिट्ठी वह विनोदिनी को दे आए - कुछ कहे नहीं, सिर्फ विनोदिनी का लज्जित चेहरा देख आए। उसे इसमें जरा भी शक न था कि खत में लज्जा की बात जरूर है। याद आया, पहले भी एक बार उसने बिहारी को चिट्ठी भेजी थी। आखिर खत में है क्या, यह जाने बिना मानो उससे रहा ही न गया। उसने अपने आपको समझाया, 'विनोदिनी उसी की देख-रेख में है, उसके भले-बुरे का वही जिम्मेदार है। लिहाजा ऐसे संदेह वाले खत

को खोल कर देखना वाजिब है। विनोदिनी को गलत रास्ते पर हर्गिज नहीं जाने दिया जा सकता।

खोल कर महेंद्र ने उस छोटी-सी चिट्ठी को पढ़ा। वह सहज भाषा में लिखी थी, इसलिए उसमें मन का सच्चा उद्वेग फूट पड़ा था। महेंद्र ने उसे बार-बार पढ़ा। खूब सोचा, मगर समझ नहीं सका कि विनोदिनी का झुकाव है किस तरफ। उसे रह-रह कर यही आशंका होने लगी, चूँकि मैंने यह कह कर उसका अपमान किया है कि मैं उसे प्यार नहीं करता, इसीलिए रूठ कर वह अपने मन को और तरफ लगाना चाहती है।

इसके बाद महेंद्र के लिए धीरज रखना असंभव हो उठा। जो लड़की अपने आपको उसके हाथों सौंप देने के लिए आई थी, वह महज जरा-सी गलती से उसके कब्जे से निकल जाएगी, यह सोच कर महेंद्र भीतर-ही-भीतर सुलगने लगा। मन में सोचा, 'विनोदिनी मन-ही-मन अगर तुझे चाहती है, तो उसकी खैर जानो - क्योंकि वह एक जगह बँधी रहेगी। अपने मन का तो मुझे पता है, मैं उस पर कभी जुल्म नहीं कर सकूँगा... वह मुझे निश्चिंत हो कर प्यार कर सकती है। मैं आशा को प्यार करता हूँ, मुझसे उसे कोई खतरा नहीं। यदि वह और किसी तरफ खिंची तो क्या अनर्थ होगा, वह कौन जानता है?'

महेंद्र ने निश्चय किया, 'अपने को प्रकट किए बिना किसी-न-किसी तरह फिर से विनोदिनी को अपनी ओर खींचना ही पड़ेगा।'

अंदर जाते ही महेंद्र ने देखा, विनोदिनी बीच में ही खड़ी उत्सुकता से किसी का इंतजार कर रही है और महेंद्र का मन डाह से जल उठा। बोला - 'नाहक इंतजार में खड़ी है, भेंट नहीं होने की। यह लीजिए, आपकी चिट्ठी लौट आई।'

कह कर उसने चिट्ठी उसकी ओर फेंक दी।

विनोदिनी बोली - 'खुली क्यों?'

महेंद्र जवाब दिए बिना ही चला गया। 'बिहारी ने चिट्ठी खोल कर पढ़ी और कोई जवाब न दे कर चिट्ठी वापस भेज दी' यह सोच कर विनोदिनी की सारी नसें दप-दप करने लगीं। उसने चिट्ठी ले जाने वाले दरबान को बुलवा भेजा। वह और कहीं चला गया था - न मिला। चिराग की कोर से जैसे गरम तेल की बूँदें टपक पड़ती हैं - बंद कमरे में विनोदिनी की दमकती हुई आँखों से आँसू टपक गए। उसने अपनी चिट्ठी

के टुकड़े कर डाले, फिर भी उसे चैन न मिला। स्याही की उन दो-चार लकीरों को भूत और वर्तमान से पोंछ डालने की, कतई मनाही कर देने की गुंजाइश क्यों नहीं? गुस्से में आई मधुमक्खी जिस प्रकार हर सामने पड़ने वाले को काट खाती है, उसी प्रकार क्षुब्ध विनोदिनी अपने चारों ओर की दुनिया को जला डालने पर आमादा हो गई। मैं जो भी चाहती हूँ, उसी में रुकावट? किसी बात में कामयाबी नहीं!



# आँख की किरकिरी - Aakh Ki Kirकिरी in Hindi

1. आँख की किरकिरी पहला भाग
2. आँख की किरकिरी दूसरा भाग
3. आँख की किरकिरी तीसरा भाग
4. आँख की किरकिरी चौथा भाग